

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182278

UNIVERSAL
LIBRARY

रजस रश्मि

रामकुमार वर्मा

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

OUP—22—14-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

H82
V31R

Accession No.

Author वमि, रामकुमार

Title रजत रश्मि 1952

This book should be returned on or before the date last marked below.

रंजत रश्मि



रामकुमार वर्मा

भारतीय • ज्ञानपीठ काशी



ग्रथमाला-सपादक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण ३०००
मार्च १९५२
मूल्य ढाई रुपये

मुद्रक
जे. के. शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

रजत रश्मि



इन एकाकी नाटको के अभिनय मे किन दर्शको का कुतूहल कब नेत्रो की भाषा बने, यह नही कहा जा सकता, इसलिए प्रत्येक दर्शक से प्रार्थना है कि

‘परदा उठने के पूर्व ही आप अपने स्थान पर शान्ति पूर्वक आसीन रहे ।’

निर्देश

	पृष्ठ
१ प्रतिशोध	२७
२ तैमूर की हार	४९
३ दुर्गावती	७९
४ औरंगजेब की आखिरी रात	११७
५ कलक-रेखा	१५३

[इन नाटको के अभिनय के लिए लेखक से अनुमति लेनी आवश्यक होगी ।]

जननी
राजरानी
की
स्मृति में
■

इन नाटकों की शैली

नवयुग की किरण ने जीवन के जिस शतदल को मुकुलित किया है उसमें एक पखुड़ी नाटक की भी है। मुसलमानी शासन के उत्तरार्द्ध में जो कला समाधिस्थ कर दी गई थी वही कला जैसे पुनर्जन्म की प्रेरणा प्राप्त कर जीवन में फिर अवतरित हुई। सस्कृत के नाटको के अध्ययन में पश्चिम के साहित्य की स्फूर्ति ने जो योग दिया उससे हिन्दी नाटको के निर्माण का पथ प्रशस्त हुआ। 'भारतेन्दु' ने सस्कृत नाट्यशास्त्र की नींव पर हिन्दी नाटको का प्रासाद निर्मित किया। उसमें कलात्मक सौन्दर्य का कौशल 'प्रासाद' की लेखनी ने उपस्थित किया। यदि हिन्दी में रगमच की प्रतिष्ठा होती तो नाटक का साहित्य अन्य साहित्यिक रूपों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होता। रगमच के अभाव में संपूर्ण नाटक के क्षेत्र में कोई प्रयोग सम्भव नहीं हो सका। यही कारण है कि हिन्दी में नाटको की प्रगति शिथिल रही। कुछ तो पश्चिमी नाट्यकला के प्रभाव से और कुछ असुविधाजनक रगमच की सुविधा न होने के कारण हिन्दी में एकाकी नाटक का लेखन आरम्भ हुआ। यो सस्कृत नाट्यशास्त्र में दशरूपको के अन्तर्गत 'अक' नाम से एकाकी की कल्पना थी किन्तु इस 'अक' में अनेक दृश्यों की व्यवस्था भी थी। कथानक लौकिक और प्रख्यात् होता था, भारती वृत्ति की प्रधानता होने के कारण वीर और करुण रस बड़े कौशल के साथ व्यक्त किया जाता था। इसमें वाग्युद्ध और विलाप दोनों ही की सम्भावना रहती थी। इस रूप में 'अक' किसी बड़े रूपक का किसी विशिष्ट घटना को लिए हुए एक विभक्ताश ही कहा जा सकता है जैसे वसन्त के दो मास चैत्र और वैशाख में से चैत्र को अलग निकाल कर रख दिया हो।

आज के एकाकी की कला इससे भिन्न है। गीतिकाव्य की भांति

एकाकी अपनी कला में पूर्ण और स्वकेन्द्रित है। उसने नये ढंग से 'सकलन-त्रय' की व्यवस्था की है। कार्य-सकलन, ज्ञान-सकलन और स्थान-सकलन की मर्यादा से उसमें एक सम्पूर्ण कार्य एक ही अवधि में एक ही स्थान पर होना आवश्यक है। जीवन की प्रमुख संवेदना को लिए हुए एक ही पात्र या एक ही परिस्थिति बादलों की भाँति नीचे से उठ कर घटनाओं के भोको में ऊपर जा कर चन्द्र और सूर्य को ढक ले और चरम-सीमा की विद्युत से आलोकित होकर जीवन के सत्य की बूँदों में बरस पड़े। यही एकाकीकार का कौशल है कि बिना समय का विस्तार बढ़ाये और बिना स्थानों को बदले, वह कौतूहल का संचय कर मनोविज्ञान में क्रान्ति उपस्थित कर दे। यह क्रान्ति चाहे यथार्थ में हो या आदर्श में, व्यक्ति में हो चाहे घटना में। यदि एकाकी अनेक दृश्यों में बँट जावे और दिनों या महीनों की अवधि पा ले तो फिर उसमें और प्राचीन संस्कृत के 'अक' रूपक में अन्तर ही क्या रहा? वह तो किसी बड़े नाटक का एक कोने से तराशा हुआ एक हिस्सा ही हो गया। किन्तु आधुनिक एकाकी की कला इसके विपरीत है। चरित्र और घटना का दिग्दर्शन एक ही दृष्टि में करा सकने की क्षमता आधुनिक एकाकी में है। जैसे पावस की अन्धकार-मयी रात्रि में गर्जन करते हुए घने काले बादलों के बीच से विद्युत् एक क्षण को चमक जाय और सारे दृश्य को ज्योति से भर कर फिर सारी ज्योति समेट ले। एकाकी की इस कला को निखारने का प्रयत्न कुछ एकाकीकारों द्वारा हो रहा है। शेष एकाकीकार अपने एकाकी को वामन भगवान् के पैर की तरह संक्षिप्त रूप से प्रारम्भ करते हैं और घटना का विस्तार करते हुए धीरे-धीरे तीनों लोक नाप ले जाते हैं। उसमें समय और स्थान की सीमा रहती ही नहीं।

हमारे यहाँ रंगमंच तो है नहीं, जिसके लिए अभिनय, संगीत, वेश-भूषा और संगीत का अभ्यास, अध्ययन और अध्यापन विश्वविद्यालयों का वैकल्पिक विषय हो। अथवा वह राज्य की ओर से स्थापित किसी संस्था

या विश्वविद्यालय द्वारा चतुर्वर्षीय या पंचवर्षीय शिक्षा-क्रम के रूप में चलाया जा सके और अभिनेता, संगीतज्ञ और सूत्रधार तैयार किए जा सकें। अभिनय में, वेश-भूषा में, रंगमंच-निर्माण में नये नये प्रयोग हो, विविध प्रकार के नाटक लिखे और लिखाए जावें और उन पर पुरस्कार दिए जावें। यहाँ तो असहाय लेखक अपनी रुचि और प्रतिभा के अनुसार नाटक लिखते हैं और वे नाटक भाग्य से कभी-कभी किसी सस्था द्वारा खेल लिए जाते हैं। दर्शकों की रुचि भी आफिस से लौटे हुए क्लर्कों की तरह उत्साह-हीन और शिथिल है। इसीलिए बड़े नाटकों का अभिनय भी कठिन हो गया है। वर खोजने की भाँति नाटक खोजे जाते हैं और उनका अभिनय भी कन्या के विवाह की भाँति ही कष्ट-साध्य है।

इन भ्रष्टों से बचने के लिए स्कूल, कॉलेज या साहित्यिक सस्थाओं द्वारा एकाकी खेले जाते हैं जिनका खेलना 'रोमांस' की तरह उत्साह-प्रद और सक्षिप्त रहता है। इस प्रकार के अभिनय ने एकाकीकारों को यथेष्ट प्रोत्साहित किया है और वे अधिक सख्या में एकाकी नाटकों का निर्माण करने लगे हैं।

हमारे मनोरंजन के क्षेत्र में रेडियो के अवतरण ने भी एकाकी नाटकों को विशेष प्रोत्साहन दिया है। यदि यह कहा जाय कि रेडियो ने ही अनेक एकाकी नाटककारों को जन्म दिया है तो कोई अत्युक्ति न होगी। किन्तु रंगमंच पर अभिनीत होनेवाले एकाकी नाटकों में और रेडियो द्वारा प्रस्तुत एकाकी नाटकों में बड़ा भेद है। दोनों की कलात्मकता (Technique) भी अलग-अलग है। रंगमंच पर नाटक उपस्थित करनेवालों की ज़िम्मेदारी से रेडियो पर नाटक प्रस्तुत करनेवालों की ज़िम्मेदारी अधिक है। उसका कारण यह है कि रंगमंच पर प्रदर्शित होनेवाले नाटकों का वातावरण मंच की सजावट, वेश-भूषा या दृश्यमान कौतूहल-प्रदर्शन से सहज ही हृदयगम हो जाता है। रेडियो पर नाटक के समस्त वातावरण को हृदयगम कराने का एकमात्र उत्तरदायित्व ध्वनि पर है। रेडियो में समस्त इन्द्रियों का

केन्द्र-बिन्दु श्रवणेन्द्रिय पर ही होता है, गोपियों के नूपुर-नाद को सुनने के लिए जैसे कृष्ण के नेत्र और मन सिमिट कर कान में ही आ गए थे । महाकवि नन्ददास ने अपनी 'रास पचाध्यायी' में लिखा है

तिनके नूपुर नाद सुने जब परम सुहाये ।

तब हरि के मन नैन सिमिट सब श्रवननि आये ॥

रेडियो में श्रवण ही नेत्र के कार्य का संपादन कर लेता है । ऐसी स्थिति में श्रवण की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति ध्वनि (रेडियो) नाटक के संयोजक को करनी पड़ती है । संयोजक की कठिनाइयों को हल करने के लिए ध्वनि-नाटककार को अपने नाटक की 'टैकनीक' मंच पर अभिनीत होनेवाले एकाकी नाटक से भिन्न रखनी पड़ती है ।

मंच पर उपस्थित किए जाने वाले एकाकी में प्रतिन्यास लिखने की आवश्यकता है जिससे रगमंच पर आवश्यक व्यवस्था हो सके । पात्रों की अवस्था और वेश-भूषा का निर्देश आवश्यक है जिससे व्यक्तित्व की रूप-रेखा स्पष्ट हो सके । नाटक के उपयोग में आनेवाली वस्तुओं की स्थिति और उनका विवरण देना आवश्यक है । अभिनय के अंतर्गत मुख पर आने-जाने वाले भाव और अंग-संचालन की व्यवस्था देनी आवश्यक है । पात्रों द्वारा उठना, बैठना, घूमना, आगे बढ़ना, पीछे हटना, लँगडा कर चलना आदि कार्यों के निर्देश की आवश्यकता है । संकेत करना, कान में कहना, मुस्कराना, भौंहों पर बल पड़ना, ठोकर खाना, हाथ से बुलाना, मन ही मन पत्र, पुस्तक या अखबार पढ़ना आदि का अभिनय स्पष्ट किया जा सकता है ।

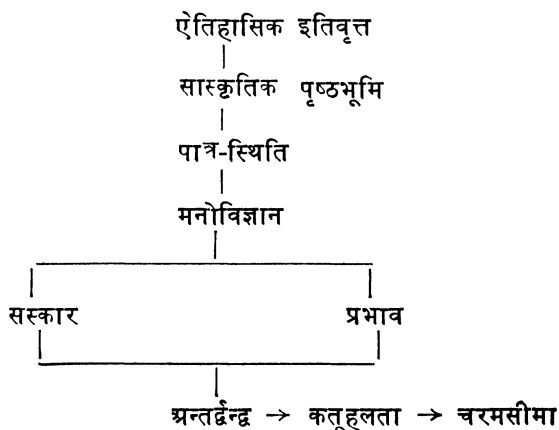
रेडियो के एकाकी में उपर्युक्त कोई भी बात सम्भव नहीं क्योंकि इन सभी का सम्बन्ध नेत्रों से है । अतः इन सब का सबोध ध्वनि से कराने की आवश्यकता होगी । यही कारण है कि ध्वनि-नाटक की टैकनीक भिन्न होती है । संक्षेप में ध्वनि-नाटक के लिए निम्नलिखित स्थूल रूप-रेखा पर ध्यान रखना होगा नाटक का समस्त प्रतिन्यास आगे होनेवाले संवादों

द्वारा स्पष्ट हो सके। नाटक में घटनाओं की गति क्षिप्र होनी चाहिए क्योंकि कान लम्बे सवादों को देर तक सुनने के अभ्यस्त नहीं हैं। सवादों को सजीव बनाने के लिए सवादों से सम्बन्ध रखनेवाले अभिनय में ध्वनि भरने की आवश्यकता होगी। नाटक में घटनाओं की प्रमुखता होनी चाहिए जिससे पात्रों का कार्य-कलाप, आरोह या अवरोह उपस्थित किया जा सके। पात्रों या घटनाओं में जितना अधिक विरोध या संघर्ष उपस्थित किया जा सकेगा नाटक उतना ही अधिक मनोरंजन का विस्तार कर सकेगा। अस-भावित या अप्रत्याशित घटनाओं का स्वाभाविक संघटन कौतूहल की पूर्ति करेगा। घटना या पात्र कार्य और कारण से अनुबन्धित होकर जितने शीघ्र विकास करेंगे उतनी अधिक मात्रा में नाटक सम्बद्ध होगा। छोटे-छोटे कार्यों की स्वाभाविकता ही रेडियो-नाटक में प्राण की भाँति अनिवार्य होगी। ऐतिहासिक नाटकों की अपेक्षा सामाजिक या पारिवारिक नाटक ही रेडियो पर अधिक सफल होंगे। ऐतिहासिक नाटकों में रंगमंच पर पृष्ठ-पट या वेश-भूषा तो सहज ही उपस्थित की जा सकती है जो रेडियो पर सम्भव नहीं है। रेडियो पर समस्त अभिनय को कठ-ध्वनि में भरना पड़ता है। अतः रेडियो में कठ-ध्वनि प्रमुख स्थान प्राप्त करती है। रेडियो पर अभिनय करने वालों को पात्र के समस्त व्यक्तित्व, अवस्था और आत्मा को कठ से ही ध्वनित करना पड़ता है। वातावरण की पूर्ति के लिए संगीत और ध्वनि-फलन (Sound effects) का उपयोग करना पड़ता है। इन सीमित आलबनों के सहारे भी रेडियो ने एकाकी नाटकों के प्रस्तार में बड़ी सहायता पहुँचाई है।

ये नाटक इस ढंग से लिखे गये हैं कि रंगमंच और रेडियो दोनों के द्वारा सफलता पूर्वक अभिनीत किए जा सकें। कुछ नाटक विशेष रूप से रेडियो के लिए लिखे गए थे, अतः उनमें प्रतिन्यास देने की आवश्यकता नहीं समझी गई। यदि ऐसे नाटक रंगमंच पर भी किए जायें तो संयोजक नाटक के

वातावरण और कथावस्तु की परिस्थिति के अनुसार रगमच की उचित व्यवस्था कर सकेंगे ।

सभी नाटक ऐतिहासिक कथावस्तु से सबध रखते हैं । इस दिशा में मुझे इतिहास के अध्ययन के साथ ही साथ तत्कालीन सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि की पूरी तैयारी भी करनी पड़ी है । इस सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में पात्रों के चरित्र को मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित करने की दृष्टि रखी गई है । मनोविज्ञान की स्थिति जहाँ एक बार तैयार हो गई फिर पात्रों का विकास अपने-आप होने लगता है, वे कार्य करते हैं और अपनी ही सवेदनाओं से अन्य पात्रों और परिस्थितियों से सपर्क या सघर्ष लेना प्रारम्भ कर देते हैं । पात्र के मनोविज्ञान में दो बातें प्रमुख होती हैं—संस्कार और प्रभाव । यदि प्रभाव संस्कारों के प्रतिकूल हो तो भयंकर अन्तर्द्वन्द्व होता है, यदि वे संस्कारों के अनुकूल हो तो पात्र विलासी होने लगता है । इस भाँति मेरे नाटकों में पात्र की स्थिति कुछ इस प्रकार होती है —



अन्तर्द्वन्द्व की यह मानसिक प्रक्रिया आप मेरे सभी नाटको में देखेंगे । इसी से कुतूहलता की सृष्टि होती है जो चरमसीमा में जाकर समाप्त होती है ।

इस संग्रह के दो नाटको को लिखाने का श्रेय मेरे मित्र श्री धर्मपाल लुम्बा को है । उन्हें धन्यवाद देना मित्रता को नापने का प्रयास करना है और मैं मित्रता को नापने के पक्ष में नहीं हूँ ।

साकेत
४, प्रयाग स्ट्रीट,
इलाहाबाद
मातृ नवमी, २००८

रामकुमार वर्मा

प्रतिशोध

संकेत

अहंकार से प्रतिभा उसी तरह कुठिल हो जाती है जैसे भयानक भू-कंप से प्रकृति की सहज शोभा नष्ट हो जाती है । जन कलाकार के लिए आवश्यक है कि वह अहंकार के आघातों से प्रतिभा की रक्षा करे ।

इस प्रतिभा का वर्णन यदि माता के कण्ठ से हा तो मैं कहूँगा कि वह वीणागाण के संगीत का पर्याय है । माता के मनोविज्ञान का संगीत ससार के समस्त तर्कों के ऊपर प्रवाहित होता है जैसे कठोर चट्टानों के ऊपर से निर्मल जल-धारा तरंगित होनी रहती है ।

भारवि की प्रतिभा में सभवतः माता के स्निग्ध हृदय की भाँकी थी । जननी ! आशीर्वाद दो कि तुम्हारे वात्मन्य में सर्वात्म्य भारवि की प्रतिभा हिन्दी के कलाकारों को भी प्राप्त हो ।



नाटक के पात्र

भारवि—संस्कृत के महाकवि

श्रीधर—संस्कृत के संत-गुरु भारवि के पिता

सुशीला—भारवि की माता

भारती—एक विदुषी

आभा—सेविका

काल—छठी शताब्दी के लगभग

स्थान—धारा नगरी

समय—रात का द्वितीय प्रहर

अभिनय

यह नाटक प्रथम बार 'आकाश वाणी' इलाहाबाद से २४ जुलाई १९५० को प्रसारित हुआ । भूमिका इस प्रकार थी :

भारवि—	श्री पी० सी० बैनर्जी
श्रीधर—	„ विजय बोस
सुशीला—	„ स्वर्णलता
आभा—	„ लीला शर्मा

(इसमे भारती की भूमिका नहीं थी ।)

प्रतिशोध

[श्रीधर ग्रंथ देखते हुए श्लोक पढ़ते हैं :—]

श्रीधर—ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

अर्थात् जगत् में जो कुछ स्थावर और जगम है, वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादित है । अर्थात् ससार के क्रोड में भगवान् की सत्ता ही है । तू नामरूपात्मक बाहरी विकारों के परित्याग से वास्तविक सत्ता जो ईश्वर की है, उसका स्वाद—तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा [सुशीला की ओर देख कर] तुम ध्यान से नहीं सुन रही हो ।

सुशीला—(ध्यान-मग्नता से चौंक कर) अँह, सुन तो रही हूँ

किन्तु भारवि . .

श्रीधर—(बीच ही में) भारवि ! फिर भारवि ! भारवि के पीछे वेद छोड़ दो, उपनिषद् छोड़ दो, शास्त्र छोड़ दो । भारवि ही ससार में एक पुत्र है और तुम्ही ससार में एक माता हो ।

सुशीला—यह मैं नहीं कहती, किन्तु भारवि अभी तक नहीं आया ।

श्रीधर—नहीं आया, तो आ जाएगा ! इस धारा नगरी में उसके आकर्षण के बहुत से केन्द्र हैं । कहीं बैठ गया होगा । कोई कविता का भाव खोजने लगा होगा । महाकवि जो बनता है ।

सुशीला—महाकवि बनता है ! क्या वह महाकवि नहीं है ?

श्रीधर—होगा ! भाव खोजनेवाला महाकवि होता है । तुम भी महा-

कवि हो सकती हो । तुम भी कविता का भाव खोजो न ।
उसकी माता हो । तुम तो अधिक अच्छा भाव खोज सकती हो ।

सुशीला—मैं भाव खोजना क्या जानूँ । आप ही खोजिए ।

श्रीधर—मैं खोजूँ ? अच्छा, देखो । यही भाव देखो, ईशावास्योपनिषद्-
के पहले ही श्लोक में 'त्येन त्यक्तेन भुजीथा' । अर्थात् तू नाम-
रूपात्मक बाहरी विकारों के परित्याग से वास्तविक सत्ता जो
ईश्वर की है—

सुशीला—ईश्वर की सत्ता तो है किन्तु भारवि नहीं आया ?

श्रीधर—नहीं आया तो जायगा कहाँ । क्या कहूँ, सुशीला । भारवि
तो उपनिषद् से भी बढ कर हो गया है कि उसके चित्तन में उप-
निषद् का चित्तन भी समाप्त हो गया ।

सुशीला—होने दीजिए । माता के हृदय से बढ कर कोई शास्त्र
नहीं है ।

श्रीधर—ठीक है । और फिर तुम्हारा भारवि है कवि । कवि समय
पर शासन करता है । समय उस पर शासन नहीं करता ।
दिवस और रात्रि के उज्ज्वल और श्याम रंगवाले समय
के जो नेत्र हैं उनमें कवि दृष्टि बनकर विचरण करता है ।
वह घर और बाहर में अन्तर क्या समझता है ? वह समस्त
ससार को अपने में देखता है और अपने में समस्त ससार को ।
कवि ससार में रह कर भी ससार से परे हो जाता है ।

सुशीला—तो क्या भारवि कवि बन कर मेरा पुत्र नहीं रहा ?

श्रीधर—पुत्र तो है ही किन्तु वह ससार का जनक भी है । जनक ।
अपनी कल्पना से वह न जाने कितने ससार के समूहों का निर्माण
कर सकता है ।

सुशीला—तो क्या कल्पना से वह अपनी माता का भी निर्माण कर सकता
है ? और वह करे भी, तो कर ले किन्तु ससार में उसकी एक

ही माता रहेगी—एक ही जननी रहेगी और वह मैं हूँ, मैं !
भारवि की केवल एक माता है और वह मैं हूँ ।

श्रीधर—हाँ, माता तो तुम्ही हो । किसी दिन शास्त्रार्थ करके देख लेना ।

सुशीला—शास्त्रार्थ के नियमों में माता का हृदय नहीं बाँधा जा सकता ।
शास्त्र में सिद्धांत है, प्रेरणा नहीं है । शास्त्र में माता की प्रशस्ति
है किन्तु माता के हृदय का स्पन्दन नहीं है । शास्त्र तो तत्व की
बात कहता है उसे आसुओं की तरलता और सुख की विह्वलता
का अनुभव नहीं है ।

श्रीधर—माँ के आसुओं की तरलता और सुख की विह्वलता का अनुभव
पुत्र करता है ?

सुशीला—अवश्य करता है । क्रिया की प्रतिक्रिया तो होती ही है ।

श्रीधर—तो देख लूँगा उसकी विह्वलता । तुम इस विह्वलता से ऊपर
उठो । शास्त्र का चिंतन करो ।

सुशीला—आप भारवि के पिता हैं तो शास्त्र का चिंतन कर सकते हैं, मैं
कैसे करूँ ? आज दूसरा दिन है और वह नहीं आया । और
दिनों तो वह जल्दी आ जाया करता था—आज दूसरी रात्रि
का दूसरा प्रहर है और वह अभी तक नहीं आया । न जाने वह
कहाँ होगा, उसने भोजन भी किया होगा या नहीं ?

श्रीधर—सुशीला, तुम व्यर्थ ही चिन्ता करती हो । भारवि कोई शिशु
तो है नहीं जिसे भोजन कराने के लिए माता के दुलार की आव-
श्यकता है । वह किसी गोष्ठी में बैठ कर कविता का आनन्द
ले रहा होगा, यहाँ माता चिन्तित हो रही है ।

सुशीला—आप इतने निष्ठुर कैसे हैं ? क्या शास्त्र का चिंतन और
पाण्डित्य मनुष्य को निष्ठुर बना देता है ? भूख-प्यास में भी
कही कवि-गोष्ठी से रुचि हो सकती है ? मेरा भारवि कही
अन्यत्र भोजन नहीं करता ।

श्रीधर—भारवि-भारवि-भारवि । न तुम शात रहोगी; न मुझे शात होने दोगी । भारवि मूर्ख है और तुम '.....' ।

सुशीला—(बीच ही में) हाँ, मैं भी मूर्खा हूँ । यदि पुत्र के लिए माँ की ममता मूर्खता है तो ऐसी मूर्खता सदैव ही मुझमें बनी रहे । आप पण्डित बने, शास्त्री हो, विद्या के आचार्य हो । मेरे लाल को मूर्ख समझे और मुझे भी ।

श्रीधर—सुशीला, अब तुम्हें मैं कैसे समझाऊँ ?

सुशीला—कही आप ही ने तो उसे घर आने से नहीं रोक दिया ?

श्रीधर—मैंने ?

सुशीला—हाँ, आपने ।

श्रीधर—मैंने कभी रोका है ? कभी रोक सकता हूँ ?

सुशीला—पिता सब कुछ कर सकता है । वह उसे घर से निर्वासित कर सकता है, जाति से निर्वासित कर सकता है, समाज से निर्वासित कर सकता है ।

श्रीधर—किन्तु हृदय से निर्वासित नहीं कर सकता ।

सुशीला—हृदय से न सही, घर से तो निर्वासित कर ही सकता है ।

श्रीधर—यदि वह अन्याय का आचरण करे, धर्म के प्रतिकूल चले तो यह भी सम्भव है ।

सुशीला—तो आपने ही उसे आने से रोक दिया है ।

श्रीधर—मैंने रोका तो नहीं, किन्तु यदि वह मेरी बात का उल्टा अर्थ लगाए तो मैं क्या करूँ ?

सुशीला—तो आपने ही मेरे लाल से ऐसी बातें की हैं जो उसे कष्टकर हुईं ?

श्रीधर—यदि कष्टकर हो तो उसकी अपनी धारणा है ।

सुशीला—तो आपने उसकी ताड़ना अवश्य की होगी ।

श्रीधर—यदि पिता चाहता है कि उसका पुत्र सुमार्ग पर चले तो कभी-कभी ताड़ना अनिवार्य हो जाती है ।

मुशीला—तो आपने उसकी ताडना की है ?

श्रीधर—हाँ, मैंने की है ।

मुशीला—इसीलिए वह नहीं आया । क्या मैं कारण जान सकती हूँ ?

श्रीधर—अवश्य । इधर मैंने देखा कि वह शास्त्रार्थ में अनेक पण्डितो को पराजित कर रहा है ।

मुशीला—तो यह तो आपकी प्रसन्नता का विषय होना चाहिए ।

श्रीधर—होना तो चाहिए किन्तु मैं इधर देखता हूँ कि पण्डितो की हार से उसका अहंकार बढ़ता जा रहा है । उसे अपनी विद्वत्ता का घमड़ हो गया है । उसका गर्व सीमा का अतिक्रमण कर रहा है । यह मुझे सहन नहीं हो सकता ।

मुशीला—तो क्या आप मेरे लाल से ईर्ष्या करते हैं ?

श्रीधर—मूर्खा हो तुम भी । क्या पिता भी पुत्र से कभी ईर्ष्या कर सकता है ? क्या बीजाकुर अपने पुष्प से कभी ईर्ष्या करेगा ? किन्तु मैं यह सहन नहीं कर सकता कि मेरा पुत्र दभी हो । मैं दभी पुत्र का पिता होना अपमान समझता हूँ ।

मुशीला—तो आपने उसे ताडना दी ?

श्रीधर—हाँ, उसे ताडना दी । और उग्र रूप से ।

मुशीला—क्या कहा आपने ?

श्रीधर—मैंने कहा कि तू महामूर्ख है, दभी है, अज्ञानी है ।

मुशीला—यह आपने भारवि से एकात में कहा या पण्डितो के सामने ?

श्रीधर—पण्डितो के सामने । मुझे किसका सकोच है ? पण्डितो के सामने ही मैंने अनुशासन किया ।

मुशीला—पण्डितो के सामने ही ? पण्डितो ने क्या कहा ?

श्रीधर—कहेगे क्या ? वे भारवि की ओर देख कर हँसने लगे । भारवि के स्वर में ही बोल कर वे उसका परिहास करने लगे और ताली पीटने लगे ।

सुशीला—और बेचारा भारवि ?

श्रीधर—भारवि ने एक बार व्यथित दृष्टि से मेरी ओर देखा । फिर ग्लानि से अपने हाथों से अपना मुख छिपा लिया और तब वह एक ओर चुपचाप चला गया ।

सुशीला—आपने रोका नहीं ?

श्रीधर—नहीं, यदि रोकता तो अनुशासन की मर्यादा कैसे रहती ?

सुशीला—मेरे लाल से अधिक प्रिय आपको अपने अनुशासन की मर्यादा थी ?

श्रीधर—सुशीला ! मोह में मत बहो । अनुशासन की मर्यादा पर बड़े-से-बड़े व्यक्ति का बलिदान किया जा सकता है ।

सुशीला—ओह, आपके क्रोध को देखते हुए वह अब फिर घर लौट कर नहीं आयेगा । मेरा भारवि अब घर लौट कर नहीं आयेगा ।

आपने अनुशासन की वेदी पर उसका बलिदान कर दिया ।

श्रीधर—क्यों ? इससे पहले भी मैंने उसकी अनेक बार ताड़ना की है । फिर भी वह घर आया है, इस बार क्यों नहीं आयेगा ?

सुशीला—उसे आना होता तो इस समय तक वह अवश्य आ जाता । कहीं वह ससुराल तो नहीं चला गया ?

श्रीधर—नहीं, वह मेरी आज्ञा के बिना उस ओर एक पग भी नहीं रख सकता ।

सुशीला—तब कहीं उसने आत्म-हत्या

श्रीधर—चुप सुशीला ! वह शब्द अपने मुख से न निकालना । श्रीधर पण्डित का पुत्र इतना पतित नहीं हो सकता कि वह ऐसा जघन्य पाप करे । वह अनियमित कार्यों से मुक्त है ।

सुशीला—तब निश्चय ही वह देशान्तर चला गया ।

श्रीधर—हाँ, देशान्तर जा सकता है, किन्तु जिस श्रद्धा से वह तुम्हें सम्मान देता है उसे देखते हुए वह तुम्हारी आज्ञा के बिना देशान्तर नहीं जा सकता ।

[किसी के आने की आहट]

सुशीला—(उल्लास से) वह आया (पुकार कर) भारवि-भारवि मेरे लाल ।

श्रीधर—(पुकार कर) भारवि ।

[सेविका का प्रवेश]

सेविका—नहीं, मैं हूँ स्वामी । आभा ।

सुशीला—आभा, भारवि नहीं आया ।

आभा—अभी तक कवि नहीं आये ? मैं तो समझती थी कि वे इस समय तक आ गये होंगे ।

सुशीला—वह अभी तक नहीं आया । तू जा, जल्दी से उसे खोज ला । जल्दी जा, मेरी अच्छी आभा ।

आभा—मैं अभी जाती हूँ । स्वामिनि । अभी खोज कर लाऊँगी । किन्तु आप भोजन तो कर ले । मैंने पाक-शाला में जाकर देखा, आपका भोजन सजा हुआ रक्खा है, आपने उसे छुआ भी नहीं है ।

श्रीधर—तुमने भोजन नहीं किया, सुशीला ?

सुशीला—अब लाल के साथ ही भोजन करूँगी । न जाने उसने कुछ खाया-पिया है या नहीं । उसे ग्लानि है । ग्लानि में उसने खाया-पिया क्या होगा ? आभा । तू जा कवि को अपने साथ ही ले आ ।

आभा—मैं अभी जाती हूँ ।

सुशीला—तू कहाँ जायगी । जानती है, भारवि इस समय कहाँ होगा ?

आभा—अतिथि-शाला में होंगे । बाहर से आये हुए पण्डितों से वे प्रायः शास्त्रार्थ किया करते हैं । वही होंगे ।

सुशीला—अब वह वहाँ न होगा । . . वहाँ न होगा ।

आभा—तब तो ये मानिनी-तट पर होंगे । वहाँ बैठकर वे अपनी कविताएँ लिखा करते हैं ।

सुशीला—रात में ? आभा, संभव है मालिनी-तट पर वह कुछ सोच रहा हो । नहीं, वहाँ भी वह न होगा । उसकी लेखनी मौन होगी ।

आभा—तब जनपद में जाऊँगी ।

श्रीधर—हाँ, अधिक से अधिक वह किसी जनपद में जा सकता है, किन्तु तू अभी न जा, आभा । रात्रि अधिक हो गई है । मैं कल प्रातः काल समस्त जनपदों में जाकर उसे खोज लाऊँगा ।

आभा—स्वामी ! आज्ञा दे तो दो-एक जनपदों में अभी चली जाऊँ । स्वामी के प्रताप से मुझे मार्ग में कोई भय नहीं होगा ।

श्रीधर—रात्रि में तू उसे खोज न सकेगी, आभा । मैं ही जाऊँगा ।

आभा—जो आज्ञा । स्वामिनी भोजन कर ले तो बड़ी कृपा हो ।

सुशीला—आभा ! तू जा, मैं भोजन न करूँगी । मुझे कष्ट न दे ।

आभा—मुझे क्षमा करे । एक निवेदन और है—महाकवि से परिचित एक युवती प्रवेश चाहती है । वह स्वामी के दर्शन की अभिलाषा रखती है ।

श्रीधर—मेरे दर्शन की ? मैं इस समय किसी से नहीं मिल सकूँगा ।

सुशीला—आने दीजिए । संभव है, कवि से परिचित होने के कारण उससे लाल के सम्बन्ध में कुछ सूचना ही मिल सके । आभा ! बुला ले ।

श्रीधर—अच्छा, भीतर भेज दे ।

आभा—जो आज्ञा । (प्रस्थान)

सुशीला—गई ! आभा कहती है, मैं भोजन कर लूँ ।

श्रीधर—सुशीला ! मैं तुम्हारे हृदय के दुःख को समझता हूँ । मैं निश्चय ही कल प्रातः काल सभी जनपदों में जाकर भारवि को खोज कर उसे तुम्हारे पास ले आऊँगा ।

सुशीला—आपके अनुशासन की मर्यादा तो भग न होगी ।

श्रीधर—अनुशासन के स्थान पर अनुशासन और प्रेम के स्थान पर प्रेम है । प्रेम पर ही अनुशासन निर्धारित है और अनुशासन पर ही प्रेम । यदि प्रेम न हो तो अनुशासन का कोई मूल्य नहीं ।

सुशीला—आप को विश्वास है, भारवि किसी जनपद में मिल जायगा ?

श्रीधर—मुझे विश्वास है, जब वह अनियमित कार्यों से मुक्त है तो किसी न किसी जनपद में अवश्य मिल जायेगा ।

सुशीला—यदि नहीं मिला तो

श्रीधर—तो मैं राजकीय सहायता की प्रार्थना करूँगा । राजकीय शक्ति उसे कहीं से भी प्राप्त कर सकती है ।

सुशीला—आप मुझ पर महान् उपकार करेंगे ।

श्रीधर—मोह के वशीभूत न बनो । तुम पर मेरा उपकार कैसा ? तुम शान्ति से शयन करो । मैं कल प्रातः काल भारवि सहित लौटूँगा ।

सुशीला—परसों से गया है मेरा लाल । कौशेय वस्त्र धारण कर । पीत रंग का अधोवस्त्र और नील रंग का उत्तरीय । कुचित केश । मस्तक पर पीत चदन की पत्रावलि, मध्य में अरुण-बिन्दु । शास्त्रार्थ के लिए जाते समय मैंने अपने हाथों से उसे पुष्प-हार पहिनाया था, उसने मुझे प्रणाम किया था—स्नेह-गद्गद् हो मैंने कहा—विजयी बनो । उसके मुख पर हल्की मुस्कराहट थी । क्या जानती थी कि आज भी उसे पिता की भर्त्सना मिलेगी ।

श्रीधर—भावुक मत बनो, सुशीला । विश्राम करो । मैं तुम्हें वचन दे चुका हूँ कि तुम्हारा भारवि कल तुम्हारे पास होगा ।

सुशीला—आज ही हो सकता था वह मेरे पास । यदि आप पुत्र-प्रेम से अधिक शास्त्र-चिन्तन को महत्त्व न देते ।

श्रीधर—मैं समझता था कि वह सदा की भाँति अवश्य घर लौट आयेगा । मैंने भी थोड़ी मर्यादा रखी । किन्तु उस मर्यादा की सीमा

समाप्त हो गई । कल मैं जाऊँगा । हम उसकी पत्नी के प्रति भी तो उत्तरदायी हैं और वह यहाँ नहीं है ।

सुशीला—तब मेरे लिए न सही तो उसकी पत्नी के लिए ही आप कवि को खोज कर लाये ।

[भारती का प्रवेश]

भारती—मैं आ सकती हूँ । प्रणाम करती हूँ ? मेरा नाम भारती है ।

सुशीला—भारती ? आओ देवी ! तुम कवि भारवि से परिचित हो ?

भारती—वसन्त ऋतु में कोकिल के स्वर से कौन परिचित नहीं ? प्रभात में भैरव राग के स्वर किसे जागरण का सन्देश नहीं देते ? पूर्णिमा के आकाश में अमृत का कलश चद्रमा, अधकार के हृदय में भी प्रकाश की मदाकिनी प्रवाहित कर देता है । ऐसे ही है महाकवि भारवि । उन्हें कौन नहीं जानता ?

सुशीला—तुम उन्हें कब से जानती हो, देवी ?

भारती—गत पूर्णिमा के पर्व पर उन्होंने जो शास्त्रार्थ किया था, उसमें शास्त्र को जैसे जीवन मिल गया । आज तक वेदान्त की भीमासा इतनी सुन्दर मैंने नहीं सुनी, जैसी महाकवि भारवि के मुख से सुनी । जैसे ब्रह्म-ज्ञान सरस्वती की वीणा पर नृत्य कर रहा हो ।

सुशीला—धन्य हैं मेरा कवि ।

श्रीधर—इस समय तुम्हारे आने का अभिप्राय क्या है, देवी भारती ।

भारती—महाकवि के दर्शन । उनका सत्संग ही तो ज्ञान का सागर है, जिसके तट पर बैठ कर मैं अनुभूति की लहरे गिन सकती हूँ ।

श्रीधर—किन्तु भारवि, यहाँ नहीं है ।

सुशीला—हाँ, कवि अभी तक नहीं आया ।

भारती—मैंने तो उन्हें मालिनी-तट पर देखा था । सोचती थी कि इस समय तक वे यहाँ आ गये होंगे ।

सुशीला—कब देखा था ? किस समय देखा था, देवी ?

भारती—आज प्रातः काल उषा बेला मे ।

सुशीला—तुम उससे मिली थी ?

भारती—नहीं । वे उस समय ध्यान-मग्न थे । ज्ञात होता था जैसे वे भारती की उपासना कर रहे हों ।

सुशीला—भारती की ?

भारती—(हँस कर) मेरी नहीं । वीणापाणि भारती की, सरस्वती की । मैंने उनका ध्यान भग नहीं करना चाहा । सोचा, बाद में उनसे वार्तालाप करूँगी ।

सुशीला—फिर वार्तालाप किया ?

भारती—नहीं, वे उद्विग्नता से उठ कर एक ओर चले गये । मैं उन्हें पा न सकी ।

सुशीला—उसके बाद पता पाया कि वह कहाँ गया ?

भारती—नहीं, फिर मैं न जान सकी कि वे कहाँ गये ।

सुशीला—वह तब से आया भी नहीं । उसके पिता भी तबसे उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

भारती—ये उनके पिता हैं । प्रणाम करती हूँ । (प्रणाम करती हैं ।)

सुशीला—आयुष्मती बनो । देवी भारती ! भारवि जैसे ही आयेगा, तुम्हारे आने की सूचना दे दी जायेगी ।

भारती—मैं कृतार्थ हुई, किन्तु आप कष्ट न करें । कल प्रातः काल मैं पुनः सेवा में उपस्थित हो जाऊँगी ।

सुशीला—यदि इस बीच तुम्हें उसकी सूचना मिले देवी, तो मुझे सूचना देना । मैं कृतार्थ होऊँगी ।

भारती—अवश्य ! तो मुझे आज्ञा दे । प्रणाम करती हूँ ।

सुशीला—आयुष्मती बनो ।

[प्रणाम कर प्रस्थान]

सुशीला—देवी भारती से भी मेरे लाल की कोई सूचना नहीं मिली ।

श्रीधर—अच्छा, अब तुम विश्राम करो, शांत मन से, स्थिर चित्त से ।

सुशीला—विश्राम । स्थिर-चित्त । (व्यग की दबी हँसी) माँ के लिए विश्राम और स्थिर-चित्त । जब उसका पुत्र उसके पास नहीं है । आप विश्राम करे, शास्त्र-चित्तन समाप्त करे ।

श्रीधर—हाँ, मैं भी उठता हूँ । तुम अपनी शैया पर जाओ, बहुत देर से आसन पर बैठी हो । पैर में शून्यता हो जायगी । कल जब भारवि आयेगा तो उठ भी न सकोगी ।

सुशीला—उठ भी न सकूंगी । आप शयन करे, मैं अपनी शैया पर चली जाऊँगी ।

श्रीधर—उठो, मैं सहायता दे दूँ । स्थिर चित्त से शयन करो । उठो, मैं वचन देता हूँ कि कल भारवि को अपने साथ ही ले आऊँगा ।

सुशीला—आप मेरे जीवन का सबसे बड़ा कार्य करेंगे । चलिये ।
[सुशीला उठ कर अपनी शैया पर जाती है ।]

श्रीधर—अब ठीक है । मैं दीपक मन्द कर देता हूँ । यह लो, अब इस शैया पर शयन करो । मैं भी शयन करते हुए सोचूँगा कि सब से पहले कहाँ जाऊँ ।

सुशीला—वह अपनी ग्लानि में कहीं दूर चला गया होगा ।

श्रीधर—चाहे जितनी दूर चला जाय । मैं तो उसे लाऊँगा ही ।

सुशीला—लाइए—अवश्य लाइए । उसके बिना मैं जी न सकूंगी । पूर्णिमा के चन्द्र की तरह वह मेरा एक ही लाल है । महाकवि । महापंडित । भारवि ।

श्रीधर—(नेत्र बन्द किये चिन्तित मुद्रा में)—हूँ । (कुछ शान्ति) शयन करो ।

[कुछ देर तक स्तब्धता]

सुशीला—(कुछ क्षण बाद) मुझे नीद नहीं आ रही है—मन न जाने क्या-क्या सोचता है ।

श्रीधर—अपना मन स्थिर करो । (कुछ शान्ति) ऊपर देखो, आकाश मे'कितने तारे हैं—ये एक दूसरे से कितनी दूर हैं किन्तु इनमें से कोई चितित नहीं है । सभी समान रूप से चमक रहे हैं ।

सुशीला—इन तारों में कोई माता न होगी ।

श्रीधर—अपने मन को कल्पना से मुक्त करो । सुशीला ! ईश्वर की शक्ति में विश्वास रखो । बीज से फूल कितनी दूर रहता है किन्तु बीज कभी मलीन नहीं होता । वह फूल को प्रफुल्लित रखने के लिए निरन्तर रस भेजा ही करता है । तुम भी मंगल-कामना करो कि जहाँ भी तुम्हारा पुत्र हो सुखी रहे, प्रफुल्लित रहे ।

सुशीला—मेरा पुत्र जहाँ भी रहे, सुखी रहे, प्रफुल्लित रहे ।

श्रीधर—हाँ, ईश्वर की शक्ति कण-कण में वर्तमान है, वह सब का पोषण करता है, उस पर विश्वास रखो ।

सुशीला—मैं विश्वास रखती हूँ ।

श्रीधर—अब सो जाओ । विश्वात्मा का ध्यान करते हुए । मैं वही श्लोक पढ़ता हूँ । मेरे स्वर में अपना स्वर धीरे-धीरे मिलाकर शयन करो (श्रीधर धीरे धीरे श्लोक पढ़ते हैं और सुशीला उनके स्वर में स्वर मिलाती है ।)

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्या जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा

[कुछ खटका होता है ।]

सुशीला—(चौंक कर) यह खटका कैसा ! क्या मेरा भारवि आ गया ।

श्रीधर—अरे, यह तो हवा का भोका है जिससे द्वार पर शब्द हुआ है ।

तुम व्यर्थ ही इतनी व्यग्र हो । सुशीला ! शांत रहो ।

सुशीला—मैं शांत हूँ । शब्द से मुझे भ्रम हुआ कि मेरा कवि आ गया ।

वह भी आते समय द्वार पर ऐसा ही शब्द करता था ।

श्रीधर—तुम्हारा भारवि कल अवश्य आ जायगा । तुम शान्त हो ।

देखो, प्रकृति भी शान्त है ।

मुशीला—मैं शान्त कैसे रहूँ, चुप अवश्य हो जाऊँगी। किन्तु इस शान्ति में भी इस जुगनू को देखो जो अपने जीवन का प्रकाश, लिए हुए चारो ओर उड़ रही है—शायद इसका भी लाल कही खो गया है। कीट-पतंग तक अपने लाल को खोज सकते हैं, मैं अपने जीवन का प्रकाश लिए शांत रहूँ, चुप रहूँ। हाय रे मनुष्य ! तू कीट-पतंगो से भी गया-बीता है।

श्रीधर—मुशीला, मैं बहुत दुखी हूँ तुम्हे देख कर। यदि तुम इतनी अशान्त हो तो मैं अभी ही तुम्हारे पुत्र को खोजने के लिए जाता हूँ।

मुशीला—अन्धकार में वह कहाँ मिलेगा ! प्रातःकाल जाइए। किन्तु मेरी प्रार्थना है कि अब आप मेरे लाल की निन्दा करना छोड़ दें। आप सब के सामने उसे मूर्ख और विकल-बुद्धि बतलाया करते हैं इससे उसे मर्मन्तिक कष्ट होता है। वह पण्डित है, बुद्धिमान है, अब से आप ऐसा न करें।

श्रीधर—मुशीला, मैं आज तुम्हे एक बात बतलाऊँ ?

मुशीला—मेरे लाल के सम्बन्ध में ?

श्रीधर—हाँ, भारवि के सम्बन्ध में। बात यह है कि मेरा लाल आज ससार का एक सर्वश्रेष्ठ महाकवि है। दूर-दूर देशों में उसकी समानता करने का किसी को साहस नहीं है। वह शास्त्रार्थ में बड़े से बड़े पण्डितों को पराजित कर चुका है। उसका पाण्डित्य देख कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है। किन्तु मेरे भारवि के मन में धीरे धीरे अहंकार स्थान पाता जा रहा है। मैं चाहता हूँ कि भारवि और भी अधिक पण्डित और महाकवि बने। पर अहंकार उन्नति का बाधक है। मैं उस अहंकार पर अकुशल रखना चाहता हूँ। जिसे अपने पाण्डित्य का अभिमान हो जाता है वह अधिक उन्नति नहीं कर सकता। यही कारण है कि मैं

समय-समय पर उसे मूर्ख और अज्ञानी कहता हूँ । प्रशंसा तो सभी करते हैं किन्तु अधिकारी से निन्दा भी होनी चाहिए । मैं नहीं चाहता कि अहंकार के कारण मेरे पुत्र की उन्नति रुक जाय ।

सुशीला—(विह्वल होकर) क्या कहा आपने ?

श्रीधर—मैं नहीं चाहता कि अहंकार के कारण मेरे पुत्र की उन्नति रुक जाय ।

सुशीला—तो जो आप मेरे लाल पर क्रोध प्रकट करते हैं वह सच्चा नहीं है ?

श्रीधर—अणुमात्र भी नहीं । इस क्रोध में पुत्र के प्रति मंगल-कामना छिपी है । मेरा पुत्र और भी विद्वान् हो, और भी यशस्वी बने ।

सुशीला—ओह, आप कितने महान् हैं ?

[एकाएक दरवाजा खोलने की तीखी आवाज होती है । भारवि हाथ में तलवार लिए लडखडाते हुए आते हैं ।]

भारवि—पिता, पिता ।

सुशीला और श्रीधर—(सम्मिलित स्वर में) भारवि ।

भारवि—हाँ, मैं भारवि हूँ ।

सुशीला—(विह्वल होकर) बेटा, तू कहाँ रहा । मेरे बेटे, तू इतना निष्ठुर कैसे हो गया । तू कहाँ था । तेरी इतनी तेरी इतनी तू क्यों चला गया था कहाँ था, मेरे बेटे ।
(सिसकने लगती है ।)

भारवि—माँ, शान्त रहो । अपने चित्त को स्थिर रखो ।

सुशीला—तेरे पिता भी कहते हैं अपने चित्त को स्थिर रखो, तू भी यही कहता है । मैं कहाँ ले जाऊँ अपने चित्त को । प्रभु, इस ससार में माँ के चित्त को स्थिर क्यों नहीं बनाया ?

भारवि—माँ, मैं यह कहता हूँ—

सुशीला—बेटा, अब मैं कोई बात नहीं मानूंगी, तू बतला कि तूने अभी

तक कुछ खाया या नहीं ? मैं दो दिनों से तेरा भोजन लिए बैठी हूँ ।

भारवि—मैं इतनी ग्लानि में हूँ माँ ! कि सम्भवत मुझे जीवन भर भूख न लगे ।

सुशीला—तो तूने अभी तक कुछ नहीं खाया ?

भारवि—नहीं, माँ ।

सुशीला—ओह, मेरा लाल, दो दिनों का भूखा है । मैं अभी भोजन लाऊँगी । मैं अभी लाऊँगी । [नेपथ्य में पुकारती हुई जाती है । 'आभा, आभा, कवि आ गया, उसने अभी तक भोजन नहीं किया । कहाँ है, कहाँ है उसका भोजन ? भोजन ?']

भारवि—पिता ! मैं आपका पुत्र होने योग्य नहीं हूँ । इस तलवार से मेरा मस्तक काट दीजिए ।

श्रीधर—वत्स ! तुम्हारे मुख में ये शब्द शोभा नहीं देते । अपनी मर्यादा सुरक्षित रखो । मैं फिर कहता हूँ कि तुम मूर्ख हो । विकल-बुद्धि हो ।

भारवि—सचमुच ही मैं मूर्ख हूँ, विकल-बुद्धि हूँ । और यह तभी प्रमाणित होगा जब आप मेरा मस्तक तलवार से काट देंगे ।

श्रीधर—मेरे वाक्यों का प्रमाण तलवार के प्रमाण की आवश्यकता नहीं रखता । तलवार का प्रमाण निर्बलो का प्रमाण है । निर्भीक वाक्य सबलो का प्रमाण है ।

भारवि—किन्तु पिता ! यह तलवार मेरा मस्तक नहीं काटेगी, उस ग्लानि को काट देगी जो पिछले दो क्षणों से मेरे जीवन को झुका की भाँति झुकभोर रही है ।

श्रीधर—ग्लानि से जीवन उत्पन्न नहीं होता वत्स ! जीवन से ग्लानि उत्पन्न होती है । और इस तरह ग्लानि प्रधान नहीं है, जीवन

प्रधान है। जब तुम जीवन के अधिकारी हो तो जीवन की शक्ति से ही ग्लानि को दूर करो, तलवार की अपेक्षा क्यों करते हो ? और हाँ, तुम तो महाकवि हो ! तुम्हारे हाथों में लेखनी चाहिए, तलवार नहीं। यह तलवार कैसी ?

भारवि—पिता ! मैं महाकवि नहीं हूँ तभी तो हाथों में लेखनी नहीं है, तलवार है। जीवन का स्वामी नहीं हूँ। तभी तो ग्लानि का मुझ पर अधिकार है।

श्रीधर—ग्लानि काला बादल है वत्स ! जो जीवन के चन्द्र को मिटा नहीं सकता। कुछ क्षणों के लिए उसके प्रकाश को रोक ही सकता है। उत्साह के प्रवाह से बादल को हटा दो।

भारवि—वह रक्त के प्रवाह से ही हटेगा, पिता ! और वह रक्त मेरे मस्तक का होगा।

श्रीधर—मस्तक में सहस्रदल है वत्स ! जिसमें ब्रह्म का निवास है। ग्लानि के पोषण के लिए ब्रह्म-द्रव की आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं यह पूछता हूँ कि इस मूर्खता के धूमकेतु की रेखा कितनी लम्बी जायगी ? मैंने तुम्हारे दोष दिखलाए तो उन्हें स्वीकार करना चाहिए था। यह नहीं कि ग्लानि से दो दिन घर आने का नाम भी न लो ! बेचारी माँ को दुखी और चिंतित रखो ! उसने तुम्हारे वियोग में दो दिनों से भोजन नहीं किया। अब आधी रात में तुम आये हो, तुम्हारे हाथ में यह तलवार है और पिता से तुम अपना ही मस्तक काटने को कहते हो ! मूर्ख पुत्र ! मेरे हृदय में पिता की भावना आज तुमसे लाछित हो रही है !

भारवि—पिता, यह सब स्वीकार करता हूँ। आपसे विवाद करना मुझे और भी कष्ट-प्रद होगा। किन्तु मैं अपनी निर्बलता आपके सामने स्पष्ट करना चाहता हूँ। पिछले दो दिनों का कार्य प्रतिशोध से परिचालित था।

श्रीधर—प्रतिशोध ।

भारवि—हाँ पिता, प्रतिशोध ! आपने मुझे सदैव लाँछित किया । जब मैं शास्त्रार्थ में विजयी हुआ, आपने मुझे सार्वजनिक रूप से लाँछित किया, जिन पण्डितों को मैं पराजित करता था, वे ही आपके वाक्यों को लेकर मेरा परिहास करते थे—सभाओं में लाँछित करते थे । दो बार जब आपने सब पण्डितों के सामने निन्दा की तो मैं क्रोध और ग्लानि से भर गया । मैं घर नहीं लौट सका । मेरी सारी विजय की उमंग रसातल में चली गई । मैंने समझ लिया कि जब तक मेरे पिता वर्तमान हैं तब तक मैं इसी प्रकार लाँछित होता रहूँगा ।

श्रीधर—यह सत्य है ।

भारवि—मैं आत्म-हत्या नहीं कर सकता था क्योंकि वह एक जघन्य पाप है । मैंने अनेक बार सोचा । पिता को तो पुत्र की उन्नति से सुख होना चाहिए । उनके शरीर में हर्ष से रोमांच हो आना चाहिए किन्तु पिता को मेरी उन्नति से अप्रसन्नता होती है, पिता को मेरे दोष ही दोष दीख पड़ते हैं । वे मुझे लाँछित करते हैं । एकात में लाँछित करते तो कोई हानि न होती किन्तु विद्वन्मण्डली में वे मेरा अपमान करते हैं ।

श्रीधर—मेरा अभिप्राय विद्वन्मण्डली में ही तुम्हारे दोष दिखलाने का रहा है ।

भारवि—जिन पण्डितों ने मेरे ज्ञान को अपने सिर पर पुष्प-माला की भाँति धारण किया, उन्हीं पण्डितों के समक्ष मेरा अपमान मुझे शूल की भाँति खटक गया और आपके प्रति मेरा क्रोध अन्तिम सीमा तक पहुँच गया ।

श्रीधर—(मुस्कराकर) अन्तिम सीमा तक ? फिर तुमने क्या किया ?

भारवि—मैं पूरे आठ प्रहर तक मन ही मन जलता रहा । फिर

मैंने यही ठीक समझा कि मैं पिता के जीवन को
जीवन को ।

(शब्द रुक जाते हैं ।)

श्रीधर—हाँ, हाँ, पिता के जीवन को ?

भारवि—जीवन को समाप्त कर दूँ ।

श्रीधर—कितना अच्छा होता मुझे अपनी मृत्यु पुत्र के हाथों मिलती ।

भारवि—मैंने अपने मित्र विजयघोष के शस्त्रागार से यह पैनी तलवार चुनी जिसकी तीखी धार के स्पर्श-मात्र से जीवन का सूक्ष्म तनु बिना किसी शब्द के क्षण मात्र में कट जाता । मैं सध्या से ही इस घर के कोने में छिपा हुआ था । जब आधी रात में माता जी और आप निद्रा में लीन रहते तो मैं दबे पाँव आकर आपकी ग्रीवा पर यह तलवार रख देता । माता जी को भी ज्ञात न होता कि वे जीवन की किस दिशा में चली गई हैं । प्रातःकाल जब उन्हें ज्ञात होता और नगर में यह बात फैलती तो मैं भी आता । मेरा प्रायश्चित्त यह होता कि जीवन भर माता की कठिन सेवा कर उन्हें वैधव्य के कष्ट का अनुभव न होने देता ।

श्रीधर—फिर तुमने क्यों नहीं किया ? यह कार्य तो तुम अब भी कर सकते हो ।

भारवि—पिता ! मुझे और लाछित न कीजिए । मेरी ग्लानि को अधिक न बढ़ाइए । हाय रे, माता का हृदय ! वे क्षण मात्र भी न सो सकी । आपको छेड़ती रही । उन्होंने आपको सोने न दिया और जब बातों ही बातों में मुझे यह ज्ञात हुआ कि आपकी—आपकी यह पुत्र-वत्सलता ही है कि आप पंडितों के बीच मेरी निंदा कर मेरे गर्वाकुर को नष्ट करते हैं, मेरे अहंकार को दूर कर मेरी अधिकाधिक उन्नति चाहते हैं तो मुझ पर वज्रपात हुआ । मेरा सारा क्रोध पानी बन कर मेरी आँखों से अश्रु-धारा के रूप में

निकल पडा । ओह पिता, आप कितने महान् है ! प्रतिदिन मेरी उन्नति के अभिलाषी ! मेरे अहंकार को दूर कर मुझे साधना के पथ पर बढ़ाने वाले पिता ! मैं पापी हूँ । पितृ-हत्या से प्रतिशोध लेनेवाला यह नारकीय पुत्र आज प्रायश्चित्त रूप में अपना मस्तक कटवाने की भिक्षा माँगता है । (एक सिसकी)

श्रीधर—शान्त, शान्त ! किन्तु न तो मैं प्रतिशोध लेता हूँ और न भिक्षा देता हूँ ।

भारवि—फिर भी मैं दण्ड चाहता हूँ ।

श्रीधर—किन्तु मूर्ख, पितृ-हत्या का दण्ड पुत्र-हत्या नहीं है ।

भारवि—फिर भी शास्त्र की आज्ञानुसार जो दण्ड हो, वही दीजिए ।

श्रीधर—किन्तु मैंने तुम्हें क्षमा किया, वत्स ! दण्ड की व्यवस्था पाप के स्थिर रहने में है । जब यह पाप स्थिर नहीं रह सका, तब दण्ड को आगे बढ़ने की आवश्यकता नहीं है ।

भारवि—आप से शास्त्रार्थ करना मेरी अल्पज्ञता है, पिता ! पाप के लिए न सही मेरे प्रायश्चित्त के लिये भी तो कुछ व्यवस्था होनी चाहिए ।

श्रीधर—तेरे लिए पश्चात्ताप ही प्रायश्चित्त है ।

भारवि—आप महान् है, पिता ! किन्तु जब तक आप प्रायश्चित्त की व्यवस्था मेरे लिए न करेगे तब तक मेरे जीवन में एक ऐसी आग लगी रहेगी जिसका बुझाना मेरे लिए असंभव होगा । पिता अपनी पुत्र-वत्सलता में अडिग रहे और पुत्र पितृ-हत्या का निश्चय कर भी अदण्डित रहे ? मेरे लिए यह क्षमा असंभव होगी ।

श्रीधर—माता की सेवा कर असह्य को सह्य बनाओ ।

भारवि—पिता ! माता की सेवा तो मेरे जीवन की चरम साधना है ही, किन्तु यदि आप चाहते हैं कि आपका भारवि जीवित रहे तो उसे दण्ड दीजिए ।

श्रीधर—पुत्र यदि जीवन को ही दण्ड समझ ले तो क्या हानि है ?

भारवि—पिता ! मैं जीवन को दण्ड नहीं समझना चाहता । यह ब्रह्म की विभूति है । इसे चिन्ता में घुलाना, पाप में लपेटना, दुख में बिलखाना सबसे बड़ा अपराध है । इससे तो अच्छा है कि मैं आपकी अनुमति से दण्ड-स्वरूप आत्महत्या जैसे जघन्य पाप

श्रीधर—(बीच ही में) भारवि !

भारवि—पिता ! मेरे मन की शांति के लिए आप शास्त्रानुसार दण्ड की व्यवस्था दे ।

श्रीधर—छ मास तक श्वसुरालय में जाकर सेवा करना और जूठे भोजन पर अपना पोषण करना ।

भारवि—(धीरे धीरे दुहराते हुए) छ मास तक श्वसुरालय में जाकर सेवा करना और जूठे भोजन पर अपना पोषण करना । बस ठीक, आज से यह मेरा प्रायश्चित्त प्रारम्भ हुआ । यह लीजिए तलवार (फेक देता है ।) इसे आप कृपया मेरे मित्र विजयघोष के पास पहुँचा दीजिए और मुझे इस प्रायश्चित्त की पूर्ति की आज्ञा दीजिए ।

श्रीधर—किन्तु यह प्रायश्चित्त इसी क्षण से क्यों प्रारम्भ हो ?

[नेपथ्यसे 'बेटा, यह गरम गरम भोजन जल्दीसे कर ले' आवाज धीरे-धीरे पास आती हुई] तू बहुत भूखा होगा । जल्दी से भोजन कर ले ।

सुशीला—(पास आकर) ला, तुझे मैं अपने हाथों से खिलाऊँ ।

भारवि—नहीं, माँ ! मुझे जूठा भोजन चाहिए ।

सुशीला—(आश्चर्य से) जूठा भोजन !

•**भारवि**—हाँ, माँ, आज से छ मास तक जूठा भोजन ही मेरा भोजन है ।

सुशीला—(आश्चर्य से)—छ महीने ?

भारवि—तूने भी तो भोजन नहीं किया है ।

सुशीला—बेटा, तू खा ले । मेरी आत्मा की तृप्ति हो जाएगी । मैं जी जाऊँगी ।

भारवि—नहीं, पहले मैं अपने हाथों से तुम्हें एक ग्रास भोजन खिला दूँ ।

सुशीला—पहले तू खा ले ।

भारवि—नहीं माँ, मेरी प्रार्थना मान ले । मैं पहले तुम्हें खिला दूँ ।

सुशीला—(ग्रास लेकर) धन्य मेरे लाल, अब ले, तू खा ले ।

भारवि—नहीं माँ, मुझे क्षमा कर । छ महीने बाद तेरे इन हाथों से भोजन करूँगा ।

सुशीला—छ महीने बाद ! यह बात क्या है ? देखिए, (श्रीधर की ओर) यह छ महीनों की बात कैसी !

श्रीधर—(गम्भीर स्वर में)—यह उसका प्रायश्चित्त है ।

सुशीला—प्रायश्चित्त कैसा ! कैसा प्रायश्चित्त ?

भारवि—यह पिता जी स्पष्ट करेंगे । अब मुझे देर हो रही है । पिताजी ! आज्ञा दे । माता ! आज्ञा दे—आप दोनों के चरणों की धूल अपने सिर पर रख लूँ । अब मैं अपने आप से प्रतिशोध लूँगा । माता, प्रणाम । पिता, प्रणाम ! (तेजी से प्रस्थान)

सुशीला—भारवि, मेरे लाल !

श्रीधर—गया भारवि ।

सुशीला—मेरे लाल, लौट आ ! हाय ! कैसे आया और कैसे चला गया ! सुन मेरे लाल ! लौट आ ! मेरे लाल ! (भारवि के जाने की दिशा में आगे बढ़ते हुए) भारवि ! मेरे लाल ! [शून्य दिशाओं में भारवि की माता का स्वर क्षीण होकर लीन हो जाता है ।]

तैमूर की हार

संकेत

भारत के प्राचीन सस्कारों में सत्य-रक्षा के लिए निर्भीक बनना प्रत्येक बालक का आदर्श था। यह निर्भीकता उसके चरित्र की कसौटी पर कचन की रेख जैसी स्पष्ट होती थी। यह प्रकृति का सबसे बड़ा बल है—बल का सबसे बड़ा सौन्दर्य है—सौन्दर्य का सबसे बड़ा कल्याण है। बलकरन और कल्याणी इसी मनोविज्ञान के प्रतीक हैं।

और तैमूर ? इतिहासकार कहते हैं कि तैमूर बड़ा निर्दयी था, बड़ा खूँवार था। हो, लेकिन मैं समझता हूँ कि जो शक्तिशाली होता है, उस में शक्ति को परखने की क्षमता भी होती है। यदि यह दृष्टि उममेन रहे तो उसकी शक्ति याद की दीवार है। तैमूर शक्तिशाली होने के नाते शक्ति और वीरता को परखने की क्षमता रखता था। अतः तैमूर के चित्रण में वीरता का मनोविज्ञान है।

एक दिशा से यह कहा जाता है कि इसमें तैमूर का अपमान लक्षित होता है। यह अपमान केवल इसलिए जाना होता है कि इसके शीर्षक में 'हार' शब्द है। लेकिन यह 'हार' शब्द वही भावात्मक महत्त्व रखता है जो पुत्र के प्रति पिता की उदारता में है। मैंने तैमूर के चरित्र में वीरता को सगहने की क्षमता देखी है। अतः तैमूर का ऐतिहासिक व्यक्तित्व इस घटना से निखर कर और भी उभर आया है, ऐसी मेरी धारणा है।

वीरता के विकास का दृष्टिकोण स्वस्थ जीवन का परिचायक है और मैं कल्याणी के शब्दों में बलकरन से कहना चाहता हूँ धन्य, मेरे लाल ! घर-घर में ऐसे लाल हो !

नाटक के पात्र

तैमूर—

जफरअली — तैमूर का सरदार

अलीबेग } तैमूर के सिपाही
मुबारक }

कल्याणी— एक ग्रामीण स्त्री

बलकरन— कल्याणी का पुत्र

पहला ग्रामीण

दूसरा ग्रामीण

तीसरा ग्रामीण

स्थान — दीपलपुर के समीप वन-प्रान्त
मे एक छोटा सा गाँव

काल — सन् १३९८

समय — प्रातः काल ८ बजे

अभिनय

यह नाटक प्रथम बार 'राज' इलाहाबाद से २७ नवम्बर १९५० को प्रसारित हुआ । भूमिका इस प्रकार थी

तैमूर—	श्री विजय बोस
जफरअली—	„ सईद जाफरी
अलीबेग—	„ बी० एन० कौशल
मुबारक—	„ एच० डी० वास्तव
कल्याणी—	„ प्रतिभा वर्मा
बलकरन—	„ महेन्द्र जोशी
पहला ग्रामीण	„ के० के० सिंह
दूसरा „	„ राजेन्द्रमाथुर
तीसरा „	„ महेन्द्र प्रताप

तैमूर की हार

[मिट्टी का एक छोटा-सा घर। दाहिनी ओर एक दरवाजा है जिससे घर के भीतर प्रवेश किया जाता है। सामने की दीवाल में एक खिड़की है। बाईं ओर के दरवाजे से अन्दर पहुँचते हैं जहाँ से तलघर की ओर मार्ग है। दूसरा मार्ग गुप्त रूप से बाहर की ओर जाता है। कमरे में हर्षवर्धन, विक्रमादित्य और पृथ्वीराज चौहान आदि की कुछ तस्वीरे हैं। बाईं ओर के कोने में एक अँगोठी है जिस पर कुछ खाने की सामग्री पक रही है। उसके समीप ही कुछ बर्तनों में खाने की चीजें और मिठाइयाँ सजी हुई हैं।

कमरे के बीचो-बीच एक तलत है जिस पर एक मोटी-सी बरी बिछी है। उसके समीप ही बैठने का एक मोटा है।

कल्याणी अँगोठी के पास बैठी हुई कोयले डाल कर आग तेज कर रही है। साथ ही एक गीत गुनगुनाती जा रही है। उसका लड़का बलकरन तलत पर बैठा हुआ एक पत्थर के टुकड़े पर अपना चाकू तेज कर रहा है।]

कल्याणी—(गुनगुनाती हुई गाती है।)

अब मत जाना तुम दूर दूर ।
उठ रही है पच्छिम में धूर,
उठ रही है पच्छिम में धूर,
आ गया तुरक आ गया तुरक,
नशे में चूर—नशे में चूर चूर
अब मत जाना तुम दूर दूर !

बलकरन—(चाकू तेज करते हुए)—यह तुम क्या गुनगुना रही हो, माँ ? इस पत्थर पर मेरा चाकू तेज नहीं हो रहा ।

कल्याणी—क्या तेरा चाकू भी मेरा गाना सुन रहा है ? (पास आकर मोढ़े पर बैठते हुए) पर आज चाकू तेज करने की तुझे क्या सूझी ! आज तो तेरी वर्षगांठ है ।

बलकरन—वर्षगांठ ! मेरी वर्षगांठ पर तो हथियारो की पूजा होनी चाहिए, माँ ! पूजा ! हाँ, तो माँ, क्या यह वर्षगांठ वैसी ही होगी जैसे पारसाल हुई थी ? (चाकू रोक बेता है ।)

कल्याणी—हाँ, बिल्कुल वैसी ही । इस वर्षगांठ पर तू पूरे बारह वर्ष का हुआ । बेटा, मैं तो आशीर्वाद देती हूँ कि इसी तरह तेरी बहुत-सी वर्षगांठे मनाई जायँ । तू दिन दूना, रात चौगुना बड़े ।

बलकरन—इसीलिए तू गाना गा रही थी ! (फिर चाकू तेज करता है ।)
माँ, कैसा है वह गाना ?

कल्याणी—यो ही बहुत पुराना गाना है ।

बलकरन—(रुक कर) कितना पुराना ?

कल्याणी—बहुत पुराना । जब मैं तेरे बराबर थी । मेरी माँ गाया करती थी ।

बलकरन—तब माँ, मुझे भी सिखला दे यह गाना । जब मेरे बच्चे हो जायँगे, तो मैं भी उनके सामने गाऊँगा ।

कल्याणी—(हँसकर) गाएगा ? वाह मेरे बलकरन ! भगवान करे, तेरी-बात सच निकले । पर बच्चे, यह गाना अच्छा नहीं है ।

बलकरन—वाह, जब तेरी हर एक बात अच्छी है तो गाना क्यों अच्छा नहीं होगा ?

कल्याणी—डर का गाना है । अब तो वह ज़माना बीत गया । बहुत बरस हुए, एक तुरक आया था ।

बलकरन—तुरक कौन ?

कल्याणी—तुरक जो हमारा धरम नहीं मानता । कोई दूसरा धरम मानता है । और वह तुरक ऐसा था जो लोगो का खून बहाता था, उन्हे लूटता था, उनका घर जला देता था ।

बलकरन—ये भी कोई धरम है, माँ ?

कल्याणी—हाँ, वह तुरक तो कहता था, हमारा यही धरम है । कहता था जो हमारा धरम नहीं मानता, उसको मारने के लिये ही हमने जनम लिया है ।

बलकरन—अच्छा ? क्या नाम था उस तुरक का ?

कल्याणी—महमूद । कहते हैं, गजनी से आया था । उसने सोमनाथ का मन्दिर तोड़ा और बहुत-से आदमियो का खून बहाया । फिर बहुत-सा धन लेकर वह यहाँ से चला गया ।

बलकरन—माँ, अगर मैं उस जगह होता तो देखता ।

कल्याणी—तू ? तू देखता ? बेटा । वह तुझे भी

बलकरन—मुझे ? मुझे मारता ? और यह चाकू किस दिन काम आता ? इस चाकू से देख लेता ।

कल्याणी—अरे बेटा, उसके पास बड़ी बड़ी तलवारे थी । वह जिधर से निकल जाता, आग और मौत बरसाता जाता था । इसीलिए महमूद का नाम लोगो ने डराने के लिये रख छोड़ा था ।

बलकरन—किसको डराने के लिये ?

कल्याणी—बच्चो को डराने के लिए । जब कोई बच्चा नटखटी होता था तो लोग कहते थे—‘देखो, वह महमूद आ रहा है । तुरक आ रहा है ।’ तभी का तो यह गाना है । मेरी माँ भी यही गाना कभी-कभी गाती थी ।

अब मत जाना तुम दूर . . . दूर ।

उठ रही है पच्छिम में धूर !

तुरक पच्छिम से आया था न ? तो कहते हैं—

उठ रही है पच्छिम में धूर ।

उसकी बड़ी सेना साथ आ रही थी, उसके चलने से रास्ते की धूर ऊपर उड़ने लगती थी ।

आ गया तुरक—आ गया तुरक

नशे में चूर—नशे में चूर . . . चूर

लोगो का खून बहाना ही उसका नशा था, इसलिए माँ अपने बच्चे से कहती थी—

अब मत जाना तुम दूर . . दूर . . . !

बलकरन—(सोचता हुआ) माँ, मैं यह गाना नहीं सीखूँगा । तू भी यह गाना मत गा ।

कल्याणी—नहीं गाऊँगी, बेटा । वह तो तेरी वर्षगांठ के दिन मुझे बहुत-सी पुरानी बातें याद आ गईं तो यह गाना भी याद आ गया । गुनगुनाने लगी ।

बलकरन—नहीं माँ, अब वह बात नहीं रही । मैं इस चाकू के साथ बड़े-बड़े हथियार लेकर बड़ी दूर जाऊँगा, और तुरक को देखूँगा कि वह कैसे अपने नशे में चूर रहता है ।

कल्याणी—ठीक है, बेटा । यह तो आगे की बातें हैं, जब तू बड़ा हो जायगा । आज तो तेरी बारहवीं वर्षगांठ ही है ।

बलकरन—तो इससे क्या हुआ ? मैं तुरक से नहीं डरता । ये विक्रमादित्य, हर्षवर्धन और पृथ्वीराज चौहान के चित्र मुझ में उत्साह भरते हैं ।

कल्याणी—ठीक है बेटा । ये चित्र ऐसे ही उत्साह भरने वाले हैं ।

बलकरन—इसीलिए मैं तुरक से नहीं डरता ।

कल्याणी—तेरे पिता भी नहीं डरते थे, बेटा ! आज वे होते ।

[आँख में आँसू]

बलकरन—अरे माँ ! तेरी आँखों में आँसू ! अच्छा मैं ! अब ऐसी बातें नहीं करूँगा ! मुझे माफ़ कर दो ! मुझे माफ़ कर दो !

कल्याणी—बेटा ! तू तो मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारा है, तुझे माफ़ करने की बात ही क्या ! मैं तो गीत गाकर और तुझे देख कर ही सब कुछ भूलना चाहती थी ।

बलकरन—तो, सब कुछ भूल जाओ, माँ ! बतलाओ, आज वर्षगाँठ में क्या-क्या करोगी ?

कल्याणी—क्या कहूँगी ? अपने प्यारे बेटे को नहलाऊँगी, चन्दन लगाऊँगी, फूलों की माला पहनाऊँगी ! फिर, आज मैंने तेरे लिये बहुत अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ बनाई हैं । देख, उस कोने में रखी हुई हैं । मिठाइयों के साथ खीर खिलाऊँगी, तुझे असीस दूँगी ।

बलकरन—पर माँ, मेरे साथ तुझे भी खाना पड़ेगा । तुझे भी अपनी वर्षगाँठ आज ही मनानी पड़ेगी, अभी ही, मेरे साथ ! मैं अकेले इतनी मिठाइयाँ नहीं खा सकता !

कल्याणी—तेरे खाने के बाद खा लूँगी ! बस, दूध भर आ जाय । खीर बनने में देर ही क्या लगती है ! पानी उबल ही रहा है ।

बलकरन—अभी दूध नहीं आया ?

कल्याणी—सूरज चढ़ आया, अभी तक सुजान दूध लाया ही नहीं । जाने क्यों नहीं लाया !

बलकरन—मैं ले आऊँ ?

कल्याणी—सुजान आता होगा, बेटा ! तू कहीं जायगा !

बलकरन—‘मत जाना तुम दूर दूर’ की बात तू सोच रही है । मैं तो बड़ी दूर जा सकता हूँ और फिर, सुजान का घर है ही कितनी दूर ! रास्ते से ज़रा हटकर उत्तर की तरफ़ है न ? उस शीशम के पेड़ के नीचे ही तो उसकी भोपड़ी है । मैं अभी ले आऊँगा । इसी गुप्त मार्ग से बाहर चला जाऊँगा ।

कल्याणी—तू ऐसी बातें करता है तो जा । पर जल्दी ही लौटना ।
आज तेरी वर्षगांठ है ।

बलकरन—मैं अभी लौटकर आया । (उठता है) मुझे एक बरतन
दे दो । मैं अभी लाता हूँ । और यह चाकू अब काफी
तेज़ हो गया है, इसे मैं अपने पास रखूँगा ।

कल्याणी—चाकू तेरे किस काम अयगा ? अच्छा, यह ले बरतन (बरतन
देती है ।) बेटा, जल्दी ही लौटना ।

बलकरन—अच्छा माँ, मैं अभी आया ।

[बाई और के गुप्त मार्ग से प्रस्थान]

कल्याणी—(बलकरन के जाने की दिशा में देखती हुई) मेरा भोला बच्चा ।
बलकरन । अभी से कैसी वीरता की बातें करता है । (सन्तोषसे)
बलकरन मेरा बेटा । (फिर अँगोठी के पास आकर
आग ठीक करती है । फिर गुनगुनाती है) —‘तुम मत जाना
(सम्हलकर) नहीं यह गाना अब नहीं गाऊँगी । बल-
करन को अच्छा नहीं लगता । मेरा साहसी बच्चा । (फिर
आग ठीक करती है । थोड़ी देर तक स्तब्धता रहती है ।
फिर भयानक शोर और भगदड़ । कल्याणी भिन्न कर खिड़की
से बाहर देखने लगती है । फिर शोर और भगदड़ की आवाज़ ।
शीघ्रता से एक ग्रामीण प्रवेश करता है ।)

हिन्दू ग्रामीण—(घबराये हुए स्वरों में) तुरक आ गया । तुरक आ गया ।
भागो, भागो तुरक आ गया, भागो ।

कल्याणी—(आगे बढ़कर, दृढ़ता से) पागल हो गये क्या ? तुरक कहाँ
से आ गया ।

हिन्दू ग्रामीण—नहीं, नहीं, तुरक आ गया ।

कल्याणी—अरे तुरक जब आया था—तब से वर्षों बीत गये । अब तुरक

कहाँ है ! वह आया भी और चला भी गया ! तुरक....
(ध्यान से) हैं !

हिन्दू ग्रामीण—नहीं, सबको लेकर जंगल में छिप जाओ ? वह आ रहा है । वह आ रहा है । (भाग जाता है ।)

[फिर भगदड़ की आवाज होती है ।]

कल्याणी—यह भगदड़ कैसी मच रही है ! (आगे बढ़ती है ।)

[दूसरे ग्रामीण का प्रवेश]

मुसलमान ग्रामीण—बहन, भाग चलो । जल्दी जल्दी ! वह तैमूर आ गया ! मैंने अपनी आँखों से देखा है ! लूटते हुए आ रहे हैं वे लोग ! हम लोग मरे चलो बहन !

कल्याणी—अरे कैसा तैमूर ! कहाँ का तैमूर !

मुसलमान ग्रामीण—(नेपथ्य में देखते हुए) तुम नहीं चलोगी ? वह आया ! वह आया !

[भाग जाता है ।]

कल्याणी—क्या सचमुच ही फिर तुरक आ गया ? अरे, उसको मरे तो सैकड़ों बरस हो गये होंगे । क्या अपनी कब्र से उठ कर आ रहा है ? लेकिन कहते हैं तैमूर आया है ! तैमूर कौन ? (पुकार कर) बलकरन बलकरन !

[फिर भगदड़ की आवाज होती है । चीख और पुकार !]

(तीसरे ग्रामीण का प्रवेश)

तीसरा हिन्दू ग्रामीण—बहन कल्याणी, सब कुछ छोड़ कर जल्दी से भागो । तभी जान बचेगी । जंगल में छिप जाओ, नहीं तो घर के तलघर में ही चलो । चलो मेरे साथ समय नहीं है ।

कल्याणी—(घबड़ाहट से) बलकरन ! मेरा बलकरन तो अभी नहीं आया । उसे छोड़ कर मैं कहीं भी नहीं जाऊँगी !

तीसरा ग्रामीण—कहाँ गया बलकरन ?

कल्याणी—(घबराहट से) वह ? वह ? दूध लेने गया है । सुजान के घर ।

तीसरा ग्रामीण—सुजान के घर । बहुत अच्छा है । तब तो उसका कुछ नहीं बिगड़ेगा । सुजान का घर खास रास्ते से बहुत हट कर दूर कोने में है । वे लोग सीधे रास्ते से ही चले आ रहे हैं ।

कल्याणी—कौन ? कौन आ रहे हैं ?

तीसरा ग्रामीण—तुरक—इस बार तैमूर तुरक आया है । बड़ी भारी फौज लिए हुए है ।

कल्याणी—(डरकर) तैमूर तुरक ? बड़ी भारी फौज ?

तीसरा ग्रामीण—हाँ, पर अब समय बिल्कुल नहीं रहा । बलकरन का कुछ नहीं होगा । तुम जल्दी से चल कर तलघर में छिप जाओ ।

कल्याणी—नहीं बलकरन को आने दो । मैं बलकरन के बगैर नहीं जाऊँगी ।
(पुकारती है ।) बलकरन बलकरन बेटा बलकरन ।

तीसरा ग्रामीण—बहिन चुप रहो । तुरक सुन लेगा । जल्दी चलो चलो जल्दी ।

[हाथ पकड़ कर वेग से ले जाता है, कल्याणी का स्वर 'बलकर न' धीरे धीरे गूँज कर शान्त हो जाता है । कुछ स्तब्धता ! फिर भगदड़ । उसकी आवाज़ समाप्त होते ही वेग से तीन सैनिक घर में घुस आते हैं । उनके हाथों में तलवारें हैं, वे घर के सामान को तोड़ते-फोड़ते आते हैं । सरदार जिसका नाम जफर अली है, लात से मोढ़ा उलट बेता है । दोनों सिपाही तख्त के नीचे देखते हैं ।]

जफर—कोई नहीं । कमबख्त सब भाग गए ।

पहला—तख्त के नीचे भी कोई नहीं है ।

जफर—मुबारक ! इस वक़्त आदमियों को कत्ल करने का हमारा उतना मकसद नहीं है जितना सोना-चाँदी लूटने का है ।
इस घर में देखो, कहीं है ?

मुबारक—(देखते हुए) कही कुछ नहीं है, सरदार ! मामूली सी भोपड़ी हैं । इसमें सोना-चाँदी कहाँ ?

जफर—बेवकूफ हो तुम ! इन तसवीरो को पलटो । इनके पीछे दीवाल में कुछ होगा । ये लोग अपना सोना-चाँदी दीवालों में रखते हैं ।

[मुबारक और उसका साथी अलीबेग तलवार से सब तसवीरो को उलटता है । कुछ नहीं दीख पड़ता ।]

अलीबेग—कही कुछ नहीं है, सरदार !

मुबारक—सरदार ! अगर सोना-चाँदी उन लोगों के पास होगा भी तो वे लोग अपने साथ लेकर भाग गए होंगे ।

जफर—देखो, उस कोने में क्या है !

अलीबेग—कुछ बरतन मालूम होते हैं, सरदार ! (बर्तनों के पास जाकर उन्हें खोलता है ।) सरदार हैं, ये हैं !

जफर—(खुशी से) शाबाश ! क्या है, सोना ? चाँदी ?

[अलीबेग उठाकर लाता है ।]

अलीबेग—सरदार ! सोना-चाँदी तो नहीं लेकिन उससे भी ज्यादा कीमती चीज है जिसकी आपको और हमको सख्त जरूरत है ।

जफर—क्या ?

मुबारक—(अलीबेग के पास आकर) सरदार ! बढिया खाना ! तरह-तरह की मिठाइयाँ ! ओह (छूकर) बिल्कुल ताज़ी ! गरम !

अलीबेग—सरदार ! आप बहुत भूखे हैं । कुछ खा लीजिए । फिर तो दिन भर हम लोगों को लूट और कत्ल करना ही है !

जफर—नहीं ! नहीं फेंक दो (रुक कर) ! एँ अच्छा, इधर लाओ !

मुबारक—सरदार ! मालूम होता है, जल्दी में लोग खाना भी नहीं खा सके ! वैसा ही रक्खा छोड़ गए !

जफर—(हाथ से छू कर) हाँ, गरम मिठाइयाँ हैं । लो, तुम लोग भी लो । भूखे होंगे ।

मुबारक—सरदार नोश फरमाएँ ।

जफर—मैं खाऊँगा । लो, तुम लो । (मुबारक को देता है । वह प्रसन्न होकर लेता है ।) अच्छी मिठाइयाँ हैं । लो, अलीबेग । तुम भी लो ।

अलीबेग—(आगे बढ़ कर) सरदार तो कबूल करे । (हाथ फँलाता है ।) दर-असल ताजी है ।

(शेष मिठाई से भरी थाली जफर मोढ़े को तलवार से सीधा कर उस पर रखता है ! फिर तल्लत पर बैठता है ।)

जफर—(खाते हुए) बहुत लजीज़ । दो दिनों से खाना नसीब नहीं हुआ । अब जाकर ये मिठाइयाँ सामने आई हैं ।

अलीबेग—(खाते हुए) खुदा का फजल है, सरदार ।

मुबारक—(सहसा) लेकिन, सरदार । रुक जाइए ।

जफर—(चौंक कर) क्यों ?

मुबारक—कहीं इन मिठाइयों में जहर न मिला हो ।

जफर—बेवकूफ हो तुम । मुबारक । यहाँ के लोग इतने सीधे हैं कि वे ये बातें करना जानते ही नहीं । और फिर, हमने अपना धावा इतने जल्दी बोला है कि किसी को ऐसा करने का—सोचने का—वक्त ही नहीं मिल सकता ।

अलीबेग—सरदार, सच फरमाते हैं ।

जफर—और फिर, दो दिनों के बाद इतना अच्छा खाना नसीब हुआ है । भूख-प्यास से बुरा हाल है । और अगर इस तरह मरना ही है, तो मिठाई खाकर क्यों न मरे ।

अलीबेग—सरदार ने क्या बात कही है । मिठाई खाकर क्यों न मरे ?
वाह , वाह ।

मुबारक—सच बात है, सरदार ! भूख से तो मरना ही है, तो यह चीज फिर क्यों छोड़ी जाय !

जफर—इसीलिये मैं खा रहा हूँ । (खाते हुए) वाह, क्या कहना है !
यहाँ के लोग मिठाइयाँ बनाना भी खूब जानते हैं !

अलीबेग—सरदार, मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि वे लोग हम लोगो के लिये ही ये मिठाइयाँ बना कर छोड़ गए हैं !

मुबारक—ये कैसे ?

अलीबेग—ये ऐसे कि उन्होंने यह समझा होगा कि ये मिठाइयाँ खाकर हम लोगो का गुस्सा कम हो जायगा ! लूट-मार कम करेंगे ।

जफर—(हँसते हुए) ह ह ह ह ह ! हम लोगो का गुस्सा कम हो जायगा !
लूट-मार कम करेंगे ।

[सब लोगो की जोर से सम्मिलित हँसी]

नेपथ्य में—(तीव्र आवाज से) चुप रहो, कमबख्तो !

[तैमूरलग का प्रवेश । वह लँगडाते हुए आगे बढ़ता है । उसे देखते ही सब चौंक पड़ते हैं, मिठाइयाँ ज़मीन पर फेंक कर फौजी ढग से तन कर खड़े हो जाते हैं । सन्नाटा छा जाता है । तैमूरलग बारी-बारी से तीनों को घूरता हुआ आगे बढ़ता है ।]

तैमूर—(तीव्र स्वर में) तुम लोग ! बदबख्तो ! इसी तरह तुम हिन्दो-स्तान की दौलत गाजी तैमूर के खजाने में भरोगे ? जब तुम्हे कत्ल करना चाहिए, तब तुम आराम से तख्त पर बैठते हो ! जब तुम्हे जवाहिरात ढूँढने चाहिए, तब तुम नाश्ता करते हो और जब तुम्हे धावा बोलना चाहिए, तब तुम लोग मिल कर कहकहे लगाते हो ! जवाब दो !

[कोई कुछ नहीं बोलता—निस्तब्धता]

तैमूर—(फिर तीव्र स्वर में) मेने . . . के बाद हिन्दुस्तान पर रख इसलिए किया था कि मेरे सिपाही दौलत लूटने के बदले

आराम से खाना ढूँढते फिरे । मैं बिना जतलाए देखना चाहता था कि तुम किस तरह मेरे हुक्म को अजाम दे रहे हो । इसी-लिए मैंने अपने सब सिपाहियों को बाहर छोड़ दिया है । मैं देखता हूँ कि तुमने मेरे जिहाद को नफ्स-परवरी (इन्द्रिय लोलुपता) का एक अदना तमाशा बना दिया है । तुम यहाँ मौज से खाना खाओ और गाजी तैमूर तीन दिन से भूखा रहे, और रात-दिन हुक्म देता रहे । मैंने तुम्हे क्या हुक्म दिया था, सरदार ?

जफर—(सैनिक ढग से) बुलन्द-इकबाल ने हुक्म फरमाया था कि आज शाम तक अमरकोट पहुँच जाना है ।

तैमूर—तो अमरकोट पहुँचने का यह रास्ता है ? बदबख्त ! गाजी तैमूर के सिपाहियों को रास्ता दिखलाने की जिम्मेदारी किस पर है ? तुम पर ! और तुम ऐश करते हुए अमरकोट का रास्ता खोजोगे ?

[फिर सन्नाटा]

तैमूर—मेरे हुक्म को किसने अजाम दिया । तुमने ? तुम्हारे सिपाहियों की तलवारों पर खून का एक धब्बा भी नहीं है । तुम लोग सिपाही हो । तैमूर को मुँह दिखलाने के काबिल भी नहीं हो । बोलो, क्या चाहते हो ? खाना खाने के बाद तुम्हारे लिये नाच-गाने का इतजाम भी किया जाय ?

जफर—हम लोग आलीजाह की माफी के रुवास्तगार हैं । माफी अता फरमाई जाय ।

तैमूर—हरगिज नहीं । गाजी तैमूर कुसूर को माफ करना नहीं जानता । सरदार ! तुमने जो हुक्म-उदूली की है, उसकी सजा तुम्हे मिलेगी । मैं तुम्हारा नाम तुम्हारा नाम

जफर—जफर अली ।

तैमूर—जफर अली ! तुम गाजी तैमूर की खिदमत नही कर सकते !
आज शाम को तुम्हारी सजा तजवीज की जायगी । अभी मैं
तुम्हे तुम्हारे मरतबे से खारिज करता हूँ, समझे ?

जफर—बुलन्द-इकबाल का हुक्म !

तैमूर—जाओ, शाम तक अमरकोट पहुँचने का मेरा हुक्म पूरा हो ।
(तीव्रता) जाओ !

[तीनों सैनिकों का शीघ्रता से प्रस्थान]

तैमूर—(बड़बड़ाता हुआ) दोख के कुत्ते ! खाना, पीना, कहकहे !
सिपाहियों में आरामतलबी ! मेरे सामने हिन्दोस्तान की यह
फिजा नही रहेगी । (गला बैठ जाता है । धीरे से) नही रहेगी
(श्रोत चाटता है ।) गला सूख रहा है । तीन दिनों से
खाना नही मिला कल से पानी भी नही नसीब हुआ ।
गला सूख रहा है !

[जमीन पर गिरा हुआ बर्तन देखता है । चौंकता है । फिर तलवार
से लुढ़का कर उसे सीधा करता है ।]

सब खाली ! कमबख्तों ने कुछ भी नही छोड़ा ! लेकिन कोई
बात नही ! गाजी और मुजाहिदों (धार्मिक योद्धाओं) की
किस्मत में आराम कहाँ !

[बलकरन का दूध लिये हुए बाईं ओर के गुप्त मार्ग से प्रवेश]

बलकरन—(पुकारते हुए) मा, मा ! मैं यह दूध ले आया ।

तैमूर—(चौंक कर) दूध ?

बलकरन—(उजाड़ घर की देखकर चौंकते हुए) यह सब क्या ?
(तैमूर की देखकर) एँ, तुम कौन ? (पुकारता है) माँ माँ !
(कुछ उत्तर न पाकर) मेरी माँ कहाँ है ? (तैमूर गौर से
बलकरन की देखता है ।) इस तरह मेरे घर में घुस आने
वाले तुम कौन हो ?

तैमूर—(जोर से) खामोश ! गाजी तैमूर से यह नाचीज़ सवाल करता है कि तुम कौन हो ! कमबख्त ! अगर बात पूछने की तमीज़ नहीं है तो खामोश रह !

बलकरन—(धीरे से दुहराता हुआ)—गाजी तैमूर !

तैमूर—इस नाम से वाकिफ नहीं है ? दुनिया का जर्ज़-जर्ज़ जिसके कदमों को चूम चुका है, उससे सवाल करता है, 'तुम कौन हो ?' कमबख्त बच्चे ! मेरी तलवार से पूछ ! यह तेरे खून में डूब कर तुझे मेरा नाम बतलाएगी ! लेकिन ठहर यह दूध इधर ला इस वक्त खुदा ने मेरे लिये भेजा है ।

बलकरन—यह दूध यह दूध मेरी वर्षगांठ के लिये है ।

तैमूर—साफ जवान में बात कर, जो समझ में आये ! सामने दूध हाजिर कर !

बलकरन—नहीं, मैं माँ के सिवाय किसी को नहीं दे सकता !

तैमूर—क्या ? लेकिन मैं ले सकता हूँ ! (बलकरन से छीन कर जोर से अट्टहास करता है ।) दूध मेरा है कि नहीं ! अब तुझे इस तलवार से काट दूँ !

बलकरन—(हिचकते हुए) क्या क्या तुम तुरक हो, जो खून बहाना चाहते हो ? मेरी माँ यही कहती थी ।

तैमूर—तू बड़ा निडर मालूम होता है ! सामने आ । मेरी तलवार से कटने का फल हासिल कर ।

बलकरन—मेरे पास सिर्फ एक चाकू है । मेरे हाथ में भी एक तलवार दो ।

तैमूर—ओफ ओह ! तू मुझ से दो हाथ लड़ने का हौसला भी रखता है ! अच्छा ! पहले दूध पिऊँगा । गला सूख रहा है !

[तलवार पर तलवार रख कर दोनों हाथों से दूध का बर्तन मुँह में उलट देता है । बलकरन दौड़कर तैमूर की तलवार उठा लेता है ।]

तैमूर—(सहसा) मेरी तलवार

बलकरन—तुम्हारी तलवार अब मेरे हाथ में है। अब तुम मुझ से लड़ सकते हो, सामने आओ।

तैमूर—(बुहरा कर) सामने आओ ? शाबाश ! लेकिन मेरी तलवार तुझ से सम्हल नहीं सकेगी बच्चे ! इधर ला !

बलकरन—जैसे दूध छीन लिया था, वैसे तलवार भी छीन लो !

तैमूर—छीन लूँ ?

बलकरन—हाँ, लेकिन लड़नेवाले तलवार नहीं छीनते, वार करते हैं !

तैमूर—तेरा कहना सही है। मालूम होता है, तू बहादुर है ! मेरी फौज में भरती होगा ?

बलकरन—(दृढता से) नहीं !

तैमूर—नहीं ? इस्लाम कुबूल करेगा ?

बलकरन—(अधिक दृढता से) नहीं !

तैमूर—तो अब तुझे ज्यादा देर तक जिन्दा नहीं रखूँगा। (पैतरा बदल कर तलवार छीन लेता है।) यह रही मेरी तलवार !

बलकरन—छीन ली ? लेकिन यह बहादुरी नहीं है ! मेरे पास यह चाकू है। इसी से लड़ूँगा !

तैमूर—चाकू से लड़ेगा ? चाकू से ! (अट्टहास करता है।) ह ह ह ह ह !

बलकरन—हाँ ! थोड़ी देर पहले मैंने इसे तेज़ किया है। देखो, यह इतना तेज़ है ! मेरी उँगली से खून निकाल सकता है !

[उँगली में चुभा कर खून की बूँदें दिखलाता है।]

तैमूर—शाबाश ! तैमूर के दिल में रहम नहीं है लेकिन तेरी बातें सुन कर मैं

बलकरन—इन बातों से क्या ? चलाओ अपनी तलवार, मैं भागूँगा नहीं !

तैमूर—भागेंगे नहीं ! तू बहादुर शेर है ! मैं तुझ पर तलवार नहीं

चला सकता । तू मुझ से भी ज्यादा बहादुर मालूम होता है ।

चाकू वाला बहादुर । तेरा नाम क्या है ?

बलकरन—दुश्मन नाम नहीं पूछता—वार करता है ।

तैमूर—लेकिन तेरी बहादुरी देख कर मैं तुझे अपना दुश्मन नहीं मानता ।

तेरा नाम क्या है, चाकू वाले ?

बलकरन—बलकरन ।

तैमूर—(बुहराता हुआ) बलकरन ! बलकरन ! हिन्दुस्तान की दौलतो मे तू भी एक दौलत है ! बलकरन, गाज़ी तैमूर एहसान नहीं भूलता । जो उसकी थकावट दूर करने के लिए दूध हाज़िर कर सकता है, उसके खून से वह अपनी तलवार नहीं रँगेंगा । नहीं तो अभी तक मैंने तुझे साफ कर दिया होता ।

बलकरन—लेकिन दूध मैंने हाज़िर नहीं किया । तुमने छीन लिया ।

तैमूर—एक ही बात है । दूध मैंने पाया । मैं तेरी जान बख़्शता हूँ और तेरी एक मुराद पूरी कर सकता हूँ ।

बलकरन—मुझे कुछ नहीं चाहिए ।

तैमूर—नहीं, तू मेरा छोटा-सा बहादुर दोस्त है, चाकू वाला । और इस हैसियत से तेरा मुझ पर हक है ।

बलकरन—तो, मेरी माँ कहाँ है ?

तैमूर—मैं नहीं जानता । मेरे सिपाहियों ने तेरी माँ को कत्ल भी न किया होगा, क्योंकि उनकी तलवारों पर खून का एक भी धब्बा नहीं था ।

बलकरन—आप मेरी मुराद पूरी करेंगे ? तो फिर आप से मैं यही चाहता हूँ कि आप हमारे गाँव से बाहर चले जायँ ।

तैमूर—(बुहरा कर) गाँव से बाहर चले जायँ ? (सोच कर) मज़ूर । मैं दूसरे गाव जाऊँगा । अपने छोटे-बहादुर दोस्त की मुराद पूरी करूँगा । तेरा दूध और चाकू मुझे हमेशा याद रहेगा ।

बलकरन—धन्यवाद ।

तैमूर—मैं कुछ समझा नहीं । खैर, तैमूर की ज़िन्दगी में एक नई बात हुई ! तैमूर के सामने कम लोग आते हैं—तू आया । तैमूर कम लोगों को माफ करता है, आज किया । वह काफ़िरो का खून पीता है, आज तुझ से छीन कर दूध पिया । यह एक मोजिज़ा (करामात) है ।

बलकरन—मैं कुछ समझा नहीं ।

तैमूर—(अट्टहास कर) तैमूर की बराबरी करना चाहता है ? लेकिन तू तैमूर से भी बड़ा है । तेरा चाकू उसकी तलवार से भी तेज़ निकला । तैमूर ख़ूबवार है लेकिन बहादुरी को सलाम करता है । बहादुर बच्चे को तैमूर का सलाम ।

[फौजी ढग से सलाम करता है ।]

बलकरन—(उसी तरह) सलाम ।

तैमूर—तेरे गाँव को हाथ नहीं लगाऊँगा । सिपाहियों को हुक़म दे कर वापस कर दूँगा । (हाथ उठा कर) खुदा हाफ़िज़ ।

[शीघ्रता से प्रस्थान]

बलकरन—(उसके जाने की दिशा में देखता हुआ) तैमूर बहादुरी को सलाम करता है । (फिर लौटता है । चारों ओर देख कर पुकारता है ।) माँ ? माँ ? माँ ? (शीघ्रता से कल्याणी का प्रवेश । वह अति शीघ्रता से बलकरन को हृदय से लगा लेती है ।)

कल्याणी—बेटा बेटा बलकरन ! (सिसकने लगती है ।)

बलकरन—ऐ, माँ ! तू रोती क्यों है ? तू कहाँ थी ?

कल्याणी—बेटा, तैमूर के सिपाही आये थे । उनसे बचाने के लिये ठाकुर दादा मुझे तलघर में खींच ले गये थे । तुझे तो कुछ नहीं हुआ, बेटा ? कहीं चोट तो नहीं आई ? देखूँ !

[गौर से बलकरन के शरीर को देखती है ।]

बलकरन—नहीं, माँ । कही चोट नहीं आई ।

कल्याणी—तैमूर के सिपाहियों ने तो तुझे हाथ नहीं लगाया ?

बलकरन—जब खुद तैमूर हाथ नहीं लगा सका, तो तैमूर के सिपाही कैसे हाथ लगाएँगे ?

कल्याणी—तैमूर हाथ नहीं लगा सका ? क्या तैमूर यहाँ आया था ?
तुरक तैमूर ?

बलकरन—हाँ, माँ । आया था । वह सारा दूध पी गया ।

कल्याणी—सारा दूध पी गया ?

बलकरन—मैं सुजान के घर से दूध लाया था न ? वही दूध सब पी गया ।

कल्याणी—बेटा, वे लोग तो खून पीते हैं ।

बलकरन—पीते होंगे । लेकिन तैमूर ने तो सारा दूध पी लिया ।

कल्याणी—तैमूर ने ? तुरक ने ?

बलकरन—हाँ, माँ । तूने तो मुझे भूठ बोलना नहीं सिखलाया ।

कल्याणी—नहीं, बेटा । कैसा था तैमूर ?

बलकरन—तैमूर ? सिपाही की तरह, रोबीला चेहरा, मोटे-मोटे हाथ ।
ऊँची नाक, हाथ में तलवार । लेकिन माँ, मेरे पास भी चाकू था ।
मैंने सबेरे ही से उसे तेज किया था ।

कल्याणी—उसकी तलवार के सामने तेरा चाकू किस काम आता ?

बलकरन—उसी चाकू ने तो उसे चौका दिया । मुझे वह चाकू वाला
बहादुर कहता था ।

कल्याणी—(आश्चर्य से) अच्छा ?

बलकरन—मैंने कहा, यह चाकू बड़ा तेज है । मैंने सबेरे ही उस पर धार
रक्खी है । माँ ! उसे मैंने अपनी उँगली चीर कर दिखला दी ।
देखो, यह खून ।

कल्याणी—(चीख कर) ओह, यह खून ।

बलकरन—उसने नहीं निकाला । मैंने ही उँगली चीर कर गिराया है !

कल्याणी—(घबरा कर) तेरी उँगली से खून तो अभी तक निकल रहा है, बेटा !

बलकरन—उसकी कुछ चिन्ता नहीं है, माँ ! तैमूर कहता था कि तेरा चाकू मेरी तलवार से भी तेज निकला ।

कल्याणी—क्या तूने चाकू से उस पर वार किया था ?

बलकरन—नहीं, माँ ! मैं तो लड़ना चाहता था पर वही मीठी-मीठी वाते करने लगा । इस तरह चलता था लँगडा कर । (लँगडा कर चलता है और हाथ फेंका कर कहता है ।) 'तैमूर खूबवार है, लेकिन बहादुरी को सलाम करता है । बहादुर बच्चे को तैमूर का सलाम !' (फौजी ढंग से सलाम करता है ।)

कल्याणी—(आश्चर्य और प्रसन्नता से) वाह, तू तो बिल्कुल तैमूर ही बन गया ।

बलकरन—मैं लँगडा नहीं बनना चाहता, माँ !

कल्याणी—(हँस कर) हाँ, लँगडा कभी न बने । तू सब तरह से फले-फूले । तेरी उमर दिन-दूनी रात-चौगुनी हो ! भगवान को हजार-हजार धन्यवाद है कि उसने मेरे बच्चे की तैमूर से रक्षा की ।

बलकरन—यह सब तेरा आशीर्वाद है, माँ !

कल्याणी—हाँ, बेटा, आज तेरी वर्षगांठ है न ! (चारों तरफ देख कर) तुरक के सिपाहियों ने सारा घर तोड़-फोड़ डाला । तेरे लिये मैंने कितनी अच्छी मिठाइयाँ बनाई थी । सब नष्ट हो गई । अब तेरी वर्षगांठ कैसे मनाऊँ ?

बलकरन—अपना आशीर्वाद भर दे दे, माँ ! और

कल्याणी—और क्या ?

बलकरन—और, तू चन्दन लगाने के लिये कहती थी, न ! मेरी उँगली के खून का रक्त-चन्दन बना ले ।

कल्याणी—ओह बेटे ! तू क्या कहता है ! आज मैं अकेली हूँ ।
(सिसकती है ।)

बलकरन—अकेली क्यों ? भगवान् है और मैं हूँ, माँ ।

कल्याणी—जुग-जुग जियो, मेरे लाल ! मैं तुझे भगवान् का अश ही समझती हूँ । (चौंक कर खिड़की से देखती हुई) यह पश्चिम में धूल कैसी उड़ रही है ! क्या फिर कोई आ रहा है ?

बलकरन—तैमूर और उसके सिपाही गाँव से बाहर जा रहे होंगे ।

कल्याणी—वे तो गाँव लूट रहे होंगे और आदमियों का खून बहा रहे होंगे ।

बलकरन—नहीं, वे गाँव से बाहर जायँगे । मैंने जो कह दिया है ।

कल्याणी—तूने कह दिया है ? तेरा हुक्म वे क्यों मानने लगे ?

बलकरन—उनको मानना तो पड़ेगा ही, माँ ! तैमूर ने मेरी बहादुरी से खुश हो कर मेरी एक बात पूरी करने को कहा ।

कल्याणी—(आश्चर्य से) अच्छा ।

बलकरन—मैंने कहा—आप और आपके लोग इसी समय हमारे गाँव के बाहर चले जायँ । तैमूर ने सोचा, फिर कहा, मजूर ! मैं दूसरे गाँव जाऊँगा । अपने छोटे-से बहादुर दोस्त की मुराद पूरी करूँगा ।

कल्याणी—धन्य ! मेरे लाल ! (हृदय से लगाती है ।) घर घर में ऐसे लाल हो ।

बलकरन—(खिड़की से देखता हुआ) हाँ, पश्चिम में तो बहुत धूल उड़ रही है । वे लोग बड़ी तेज़ी से वापस जा रहे हैं ।

कल्याणी—हाँ, बेटे ! वापस जा रहे हैं ।

बलकरन—वह पश्चिम की धूल वाला तेरा कैसा गीत है ?

कल्याणी—अब तो उस गीत को बदलना पड़ेगा, मेरे बेटे ! आज तेरी वर्षगांठ के दिन ।

बलकरन—तब मेरी उँगली से खून ले कर मुझे तिलक करके उसे बदल कर गाओ ।

कल्याणी—उँगली के खून का तिलक लगाऊँ ? यही सही, मेरे लाल !
वीर बालक की वर्षगाँठ है । तेरी बारहवीं वर्षगाँठ ऐसे ही
मनाई जाय ।

[कल्याणी बलकरन की उँगली से खून लेकर तिलक करती है ।
फिर पहले गीत को बदल कर गाती है । बीच में फिर रक्त का तिलक
लगाती है ।]

गीत

तुम जाना घर से दूर दूर !

उठ रही है पश्चिम में धूर

उठ रही है पश्चिम में धूर

फिर गया तुरक—भग गया तुरक

नशे में चूर चूर . . . !

तुम जाना घर से दूर दूर . . . !

[बलकरन गम्भीर है । कल्याणी रक्त-चन्दन लगाती है । धीरे-धीरे
परदा गिरता है ।]

दुर्गावती

संकेत

शक्ति और सौन्दर्य की सम्मिलित सृष्टि का नाम दुर्गावती है। अपनी भावनाओं को नीव का पत्थर बना कर दुर्गावती ने कर्तव्य के प्रासाद का निर्माण किया जिसका कलश मध्य पग के आकाश में सूर्य की भाँति देदीप्यमान रहा।

दुर्गावती ने कहा 'जिस राज्य में घटनाएँ रहस्य का अवगुहन अपने मुख पर डाल लेती हैं उस राज्य की दृष्टि अपने पगों तक ही सीमित रह जाती है, अपने अग भी नहीं देख सकती। मेरी राजनीति में रहस्य के लिए स्थान नहीं है। रहस्य कला के लिए वरदान हो सकता है, किन्तु राजनीति के लिए अभिशाप है।'

दुर्गावती के उस मनोविज्ञान में भारतीय नारी ने अपनी तेजस्विता ससार के समक्ष उपस्थित की।

भारतीय नारी ! तुम्हारी शक्ति अपरिमित है। इस अपरिमित शक्ति की आवश्यकता भारतीय राजनीति को है। कुसुम के कलेवर में कुलिश की सृष्टि करो !

नाटक के पात्र :

दुर्गावती	—गढा मडला की महारानी
वीरनारायण	—महारानी दुर्गावती के पुत्र
दीवान अधारसिंह	—महारानी दुर्गावती के महामात्य
हैदर अली	—नवाब आसफ खा का दूत
कर्ण सिंह	—महारानी दुर्गावती का सेनापति
पाडवी	—महारानी दुर्गावती की अग-रक्षिका
गडासेन	—कुबेर गज का महावत
सैनिक	

काल	—सन् १५६४
समय	—प्रातः काल ८ बजे
स्थान	—राजमहल के कक्ष के सामने

अभिनय

यह नाटक प्रथम बार 'आकाशवाणी' इलाहाबाद से २८ जून १९५१ को प्रसारित हुआ। भूमिका इस प्रकार थी —

दुर्गावती—	श्री	मोहिनी कटरिया
वीर नारायण—	„	गोपाल नारायण टंडन
दीवान अधार सिंह—	„	पी० सी० बैनर्जी
हैदर अली—	„	गोपाल कौल
कर्ण सिंह—	„	सुरेश विहारी लाल
पाडवी—	„	शान्ति सक्सेना
गडासेन—	„	विजय बोस
सैनिक—	„	महेन्द्र प्रसाद

दुर्गावती

[नेपथ्य में हाथियों के चलने का शब्द । उनके दोनों ओर झूलती हुई घंटियाँ बारी-बारी से ध्वनि दे रही हैं । यह ध्वनि क्रमशः दूर होती जा रही है । दीवान अर्धरासिह और वीरनारायण बातें कर रहे हैं ।]

वीरनारायण—(हलकी हँसी हँस कर) बड़े सुंदर हाथी हैं, महामात्य !
 प्रातः कालीन उज्ज्वल सूर्य-किरणों में ये काले हाथी कितने भले मालूम देते हैं, जैसे सहसा प्रकाश के आ जाने से अधकार गोल चक्रों में सिमिट कर धीरे धीरे क्षितिज की ओर बढ़ता जा रहा है । (फिर हलकी हँसी)

अर्धरासिह—(चिन्ता के स्वर में) हैं

वीरनारायण—(दूर जाते हुए हाथियों को गिनते हुए) एक दो तीन चार पाँच पाँच छ सान आठ । आठ हाथी । भूमि का बोझ सम्हाल चुकने के बाद जैसे ये आठों दिग्गज अब आकाश का बोझ सम्हालने के लिए भूमि पर आ गए हैं । (हँसी) और इन्हे कितनी सुन्दर पञ्चावलियों की चित्रकारी से सजाया गया है, महामात्य ! रक्तचन्दन, शख-भस्म, गेरू और राम-रज के रंगों से कानों पर कमल की कलियाँ, गडस्थल पर लहरों की हिलोरे और सूँड पर गोल पत्तों के बीच में कुमुद के फूल कितनी सुन्दरता के साथ बनाए गए हैं, जैसे ये हाथी अपने मस्तक पर मानसरोवर की शोभा सँवारे हुए जा रहे हैं । इन हाथियों के महावतों को उनकी चित्रकला पर पुरस्कार देना चाहिए, महामात्य ।

अधारसिंह—(चिन्ता भरे स्वर में) 'हूँ'

वीरनारायण—इनमे पाँचवाँ और आठवाँ हाथी ! क्या नाम है इनका ? शायद कुबेरगज और कुमारगज ।

अधारसिंह—(बैसे ही चिन्ता भरे स्वर में) 'हूँ'

वीरनारायण—इन दोनों हाथियों की आँखों के चारों ओर कितने सुन्दर कमल बनाए गए हैं ! ऐसा ज्ञात होता है जैसे कमलों के बीच में हाथियों की आँखें भ्रमर बन कर उन कमलों का मकरन्द पान कर रही हैं ।

अधारसिंह—(अन्यमनस्कता से) ' . . . हूँ . '

वीरनारायण—आपका ध्यान किसी दूसरी ओर है, महामात्य ! आप इस प्रकार उदासीनता से क्यों बोल रहे हैं ?

अधारसिंह—राजकुमार ! आप बुरा न मानें । मेरा ध्यान इस समय इन हाथियों की शोभा की ओर नहीं है ।

वीरनारायण—वाह, इतने सुन्दर हाथी ! जो पर्वत की भाँति विशाल होकर भी आँखों में भूलते हैं । भारी होकर भी इतने हलके ! इनकी शोभा से तो आँखें खिल उठती हैं जैसे काले बादलों की शोभा में बिजली चमक उठती है ।

अधारसिंह—ठीक है, राजकुमार ! आपकी कविता की कल्पनाओं से मेरी राजनीति की गुत्थियाँ नहीं सुलभ सकती । इस समय प्रश्न यह है कि इन आठ हाथियों के बाद नवाँ हाथी महेन्द्रगज कहाँ है !

वीरनारायण—महेन्द्रगज ? वह माँ की सेवा में होगा । वह उनका प्रिय हाथी है ।

अधारसिंह—वह महारानी की सेवा में नहीं है । चार दिन पहले मैंने आदेश दिया था कि आज प्रातः काल महारानी के नवो हाथियों को स्नान करा कर सुसज्जित किया जाय और मेरे समक्ष उनका प्रदर्शन हो ।

बीरनारायण—तब तो आपकी आज्ञा के अकुश से कोई हाथी बहक नहीं सकता । महेन्द्रगज को आपके समक्ष अवश्य ही आना चाहिए ।

अधरारसिंह—किन्तु न वह इन आठ हाथियों में है और न इनके बाद ।

बीरनारायण—यह तो स्पष्ट है क्योंकि महेन्द्रगज का रंग कपूर की भाँति सफेद है । वह इन तमालवर्णी हाथियों में तो स्पष्ट ही देखा जा सकता था ।

अधरारसिंह—(गम्भीरता से) हूँ

बीरनारायण—फिर महेन्द्रगज कहाँ जा सकता है ?

अधरारसिंह—मुझे इसमें किसी षड्यंत्र की दुर्गंध मिल रही है ।

बीरनारायण—षड्यंत्र की ?

अधरारसिंह—हाँ, किसी भयानक षड्यंत्र की । ऐसे षड्यंत्र की जिसमें राज्य के किसी विशेष कर्मचारी का हाथ है ।

बीरनारायण—महामात्य ! कविता की कल्पना की भाँति मेरी तलवार की धार भी बहुत पैनी है । आप पता लगाइए कि किस कर्मचारी ने षड्यंत्र की योजना की है । मेरी तलवार एक क्षण में उसके रक्त से महाकाल भैरव का अभिषेक करेगी ।

अधरारसिंह—इस बात का विश्वास है, राजकुमार ! किन्तु इन कार्यों में शक्ति की अपेक्षा बुद्धि की अधिक आवश्यकता हुआ करती है । षड्यंत्र के मुख और उद्गम स्थान की दूरी में न जाने कितने विषैले जंतु छिपे रहते हैं । (मस्तक की पीड़ा केवल मस्तक की व्याधि नहीं है, उसका उद्गम उदर-विकार में है । उदर में बीज है, उसका विष-फल मस्तक में है ।) षड्यंत्र भी व्याधि-विकार की भाँति बढ़ने में विश्वास रखता है ।

बीरनारायण—तो महेन्द्रगज किस प्रकार षड्यंत्र का केन्द्र हो सकता है ?

अधरारसिंह—महेन्द्रगज की भाँति सफेद हाथी बिरले हैं । शक्ति, शोभा

और स्वभाव मे वह अद्वितीय है । महारानी को वह अपने आत्म-सम्मान की भाँति प्रिय है ।

वीरनारायण—यह तो मैं जानता हूँ, महामात्य ।

अधरसिंह—तो महारानी के आत्म-सम्मान की भाँति वह हाथी भी राजाओं और नवाबों की आँखों मे खटक रहा है ।

वीरनारायण—इसकी भी मुझे सूचना है ।

अधरसिंह—किन्तु मेरा अनुमान है कि इस सूचना ने षड्यंत्र का रूप ले लिया है ।

वीरनारायण—कैसे ?

अधरसिंह—कड़ा मानिकपुर का पजहजारी सूबेदार आसफ खाँ इसके पीछे है ।

वीरनारायण—सूबेदार आसफ खाँ ?

अधरसिंह—हाँ, सूबेदार आसफ खाँ । पिछले पन्द्रह वर्षों मे महारानी ने जिस योग्यता से गढा-मडले का शासन किया है उससे आसफ खाँ के मन मे द्वेषाग्नि जल सकती है ।

वीरनारायण—यह द्वेषाग्नि ही उसे समाप्त करेगी, महामात्य ।

अधरसिंह—महारानी ने अपने त्रैलोक्य-विश्रुत यश तथा हिमालय के समान उत्तुंग स्वर्ण-मन्दिरों के निर्माण द्वारा पृथ्वी का रूप ही परिवर्तित कर दिया है । हमारे राज्य मे रत्न-खानियों के समान बहुमूल्य रत्न जहाँ-तहाँ फैले हुए हैं और इन्द्र के ऐरावत की भाँति अनेक मत्त मतगज हमारे द्वार पर भूला करते हैं । नवाब आसफ खाँ के लिए यह सब असह्य हो गया है ।

वीरनारायण—तो इससे हम डरने वाले नहीं हैं, महामात्य ।

अधरसिंह—ठीक है । आपकी ही बात मुझे याद आ रही है, कहीं काले बादलो से आकाश डर सकता है ? किन्तु इसकी पूर्ण व्यवस्था करनी आवश्यक है । आसफ खाँ के विचार गढा-मडले के सबध

मे अत्यंत कलुषित और पतित है । वह समझता है कि एक निस्सहाय नारी के हाथों से इतनी बड़ी सम्पदा आसानी से छीनी जा सकती है ।

वीरनारायण—वह आक्रमण करके देख क्यों नहीं लेता ?

अधारासिंह—उसी की यह भूमिका है कि आज महेन्द्रगज अन्य आठ हाथियों के साथ नहीं दीख पड़ा । नवाब आसफ खाँ ने एक बार यह प्रस्ताव किया था कि महारानी महेन्द्रगज को भेट-स्वरूप भिजवाने की व्यवस्था करे ।

वीरनारायण—नवाब आसफ खाँ कब से अपने को भेट का अधिकारी समझने लगा ?

अधारासिंह—जब से उसने इस सबध में मुगल सम्राट् जलालुद्दीन अकबर की स्वीकृति प्राप्त कर ली है ।

वीरनारायण—अच्छा ? किन्तु मुगल सम्राट् की स्वीकृति हमारे लिए मान्य नहीं हो सकती ।

अधारासिंह—नहीं हो सकती, राजकुमार ! हमारा राज्य सब प्रकार से स्वाधीन है और हम अपने राज्य के नियमों से ही शासित हो सकते हैं । बाहरी कोई नियम हमारे लिए आदेश का रूप नहीं ले सकते । इसीलिए महारानी ने इस प्रस्ताव पर कोई ध्यान नहीं दिया ।

वीरनारायण—तो महेन्द्रगज कहाँ है ?

अधारासिंह—गढा-मडले की सीमा पर कुछ उपद्रव हुए हैं । कुछ यवन सैनिक छद्म वेश में हमारे राज्य में अशान्ति मचा रहे हैं । कल मैंने ऐसे सात षड्यन्त्रकारियों को बन्दी बना कर उनके दंड की व्यवस्था दी है किन्तु अभी और भी छद्मवेशी यवन होंगे । उनसे संभवतः हमारे यहाँ के कुछ कर्मचारी भी मिले हों और उन्हीं लोगों के षड्यन्त्र से महेन्द्रगज गायब कर दिया गया हो ।

मुझे चिन्ता इस बात की है कि कही महेन्द्रगज कडा मानिकपुर न भेज दिया गया हो ।

वीरनारायण—क्या इसकी सभावना हो सकती है ?

अधरारसिंह—सभावना तो कम है किन्तु हमारी प्रजा के लोग अपनी सरलता मे दूसरे पर सहसा विश्वास कर लेते है । यह सरलता मनुष्य को जितना ऊपर उठाती है शत्रुओ को उतना ही अधिक उग्र बना देती है ।

[नेपथ्य में कोलाहल होता है—‘आप कौन है ?’

—‘आप कहाँ से आए है ?’

—‘जनाब, मे दीवान साहब से मिलना चाहता हूँ ।’

—आप दीवान साहब से क्यों मिलना चाहते हैं ?

[आदि सम्मिलित बातें सुनाई पड़ती है ।]

[एक सैनिक का प्रवेश]

सैनिक—महाराज की जय हो । एक दूत सेवा मे आने की आज्ञा चाहता है ।

अधरारसिंह—दूत ? कहाँ से आया है ?

सैनिक—महाराज ! वह कडा मानिकपुर से सेवा मे उपस्थित हुआ है ।

वीरनारायण—कडा मानिकपुर से ?

अधरारसिंह—क्या नवाब आसफ खाँ की ओर से आया है ?

सैनिक—हाँ, महाराज !

अधरारसिंह—क्या चाहता है ?

सैनिक—पूछने पर भी नहीं बतलाता । महाराज की सेवा में आने की आज्ञा चाहता है ।

अधरारसिंह—उसका नाम ?

सैनिक—हैदर अली ।

अधरसिंह—(सोचते हुए) हैदर अली ! कडा मानिकपुर से !
नवाब आसफ खाँ ने भेजा है ।

वीरनारायण—(उपता से) वह किसलिए यहाँ आ सकता है ?

अधरसिंह—शत्रुता का बहाना मोल लेने के लिए । (सैनिक से) सैनिक,
उसे यहाँ भेजो ।

सैनिक—जो आज्ञा । (प्रस्थान)

वीरनारायण—इसका सबध भी षड्यंत्र से हो सकता है ।

अधरसिंह—राजनीति मे सब कुछ संभव है ।

वीरनारायण—तब तो हमे प्रत्येक क्षण प्रस्तुत रहना चाहिए ।

अधरसिंह—पिछले कुछ दिनो से जैसी घटनाएँ सामने आ रही हैं उनसे तो
यही ज्ञात होता है कि यह किसी भयानक भविष्य की भूमिका है ।
यह तो महारानी के राज्य की सुदृढता का प्रमाण है कि चिनगारी
आग लगाने के पूर्व ही बुझा दी जाती है । चिनगारियो को
फूँक मार कर लपट बनाने मे यवनो की साँमे निरन्तर उग्र बनती
जा रही है, किन्तु (दूत का प्रवेश । उसे देख कर) अच्छा
तुम ?

दूत—(भुक कर सलाम करता हुआ) वजीरे आज्ञम की खिदमत मे
हैदर अली आदाब बजा लाता है ।

अधरसिंह—फरमाइए । आपने इधर का रुख कैसे किया ?

हैदर अली—आलीजाह, बन्दा कडा मानिकपुर से हाजिर हुआ है ।

आला हजरत नवाब आसफ खाँ बहादुर ने हुजूर की खिदमत मे
मुझे हाजिर होने का हुक्म दिया है ।

अधरसिंह—नवाब आसफ खाँ बहादुर ने ? किसलिए ?

हैदर अली—हुजूर, शक करने की कोई बात नहीं है । नवाब साहब
बहादुर के दिल मे हुजूर ने जो जगह हासिल की है वह शायद
दुनिया के किसी इसान को मयस्सर नहीं हो सकी । सुबहोशाम

जब आपका चर्चा चलता है तो हुजूर । मालूम होता है गोया सारी फिजा हुजूर के नाम से गूँज उठी है । नवाब साहब बहादुर फरमाते थे कि अगर हुजूर जैसे दीवान उनकी सल्तनत में रौनक अफरोज होते तो वो दुनिया के हर सिम्त में हुकूमत का नक्कारा बजवा सकते थे ।

अधरसिंह—यह आपके नवाब साहब बहादुर की इज्जत-अफजाई है मगर हमारे राज्य का जो कुछ भी नाम है वह सब महारानी दुर्गावती का प्रताप है ।

हैदर अली—आफरी । सद् आफरी । क्या कहना है, हुजूर दुर्गावती महारानी का । वो तो नूर की देवी है । जिस वक्त हाथी पै सवार होके वो मैदान-जग के लिए रवाना होती है तो क्या कहना है, हुजूर । मालूम होता है कि गोया बिहिश्त है जो अपने हजार जल्वे से तमाम रूए-जमीन पर फैल गया है । हुजूर, अगर मुवा-लिगा न समझा जाय तो मैं अर्ज करूँगा कि अगर दमकती हुई बिजली इसान की शकल अस्तियार करे तो शायद उसका नाम महारानी दुर्गावती हो सके ।

अधरसिंह—(मुस्करा कर) सुन रहे हैं, राजकुमार ?

हैदर अली—(राजकुमार को देख कर) ओहो, राजकुमार साहब हैं । आदाब बजा लाता हूँ । (दीवान अधरसिंह को संबोधन करते हुए) आलीजाह । क्या कहने है, राजकुमार साहब के । राज-कुमार साहब के तेवर ऐसे हैं गोया तेज कटार हैं जो मखमली म्यान में पोशीदा हैं । मुस्कराते हैं गोया मौसम बहार में हर शाख में फूल खिल उठे हैं । मैं तो सदके जाता हूँ जनाब राजकुमार साहब के ।

अधरसिंह—तुम बहुत अच्छी बातें करते हो, हैदर अली । किसलिए तुमने यहाँ तक आने की तकलीफ गवारा की ?

हैदर अली—अब हुजूर ! क्या अर्ज करूँ । हुजूर के जाहोजलाल के आफ-ताब के आगे किस्मत की तारीकी कभी ठहर सकती है ? हुजूर ! अच्छी तरह से यकीन रखे कि वह दिन जल्द आएगा जब तमाम दुनिया में हुजूर का नाम रोशन हो जायगा । उसी रोशनी की एक किरन पाने के लिए बन्दा खिदमत में हाजिर हुआ है ।

अधरसिंह—अच्छा ?

हैदर अली—हाँ, हुजूर ! कौन है जो बुलन्द शान की अजमत का जल्वा देखने का मुश्ताक नहीं है ? कौन है जो शहरयार वजीरे-आजम अधरसिंह की कदमबोसी करने में अपनी खुशकिस्मती नहीं समझता ? बहादुरी, जॉनिसारी, वफादारी तो हुजूर तीन-तिरबेनी की शकल अख्तियार कर रही है । कौन है हुजूर ! जो राजकुमार साहब के उरुज के लिए दुआएँ नहीं माँगता ?

अधरसिंह—ठीक है, हैदर अली ! हम तुम्हारी शीरी-जबानी से बहुत खुश हुए लेकिन साफ साफ कहो कि तुम्हारे आने का क्या खास मकसद है ।

हैदर अली—(खुशामदाना स्वर में) हहहहह हुजूर ! क्या अर्ज करूँ । यो तो हुजूर की दोस्ती का जिक्र हमारे दरबारे-मुबारक में नवाब साहब बहादुर हमेशा ही करते रहते हैं और वो हर खासोआम की जबान पर है लेकिन हुजूर ! दुनिया के लोग हैं कि सुनते हैं और भूल जाते हैं । शायद इसलिए कि दरबारे-मुबारक में नवाब साहब बहादुर को बार बार हुजूर का जिक्र-खैर करने का मौका मिले ।

अधरसिंह—यह आपके नवाब साहब बहादुर की मेहरबानी है ।

हैदर अली—हुजूर, यह आपका अखलाक है लेकिन यह जो हुजूर में और हमारे नवाब साहब बहादुर में मुहब्बत है, एकदिली है, अगर दुनिया पर उसके रोशन होने का कोई जरिया होता तो क्या

कहना है, हुजूर । यह हुजूर और नवाब साहब बहादुर के लिए जरूरी नहीं है, यह हमारे दुश्मनों के लिए जरूरी है ।

अधरसिंह—ठीक है, लेकिन यह तो बतलाइए कि वह जरिया क्या हो सकता है ?

हैदर अली—निहायत बजा इरशाद है, हुजुरे वाला । बिल्कुल ठीक है, गरीब परवर । लेकिन खता मुआफ हो । मैं क्या अर्ज कर सकता हूँ । लेकिन नवाब साहब बहादुर ने अपनी तरफ से यह तजवीज फरमाई है कि

अधरसिंह—हाँ, हाँ, कहिए । रुक क्यों गए ?

हैदर अली—हुजूर, नवाब साहब बहादुर ने यह फरमाया है कि अगर बुलन्द-इकबाल महारानी दुर्गावती अपना मुफ़ेद हाथी महेन्दरगज अता फरमाने की मेहरबानी कर सके तो

बीरनारायण—(उप्राता से कड़े स्वर में) हैदर अली ।

अधरसिंह—पूरी बात कहो, हैदर अली ।

हैदर अली—हुजूर । अगर इस नादान की ज़बान से कोई गलत जुमला निकले तो उसे तराश देने का हुक्म फरमावे लेकिन मुझ नाचीज़ के ज़रिए नवाब साहब बहादुर ने महज दोस्ती को मुस्तहक़म करने के लिए एक अदना-सा सवाल पेश किया है ।

अधरसिंह—और कुछ ?

हैदर अली—हुजूर, शहशाहो की बात शहशाह ही जान सकते हैं । इस गरीब को तो इस मामले के बाबत गुज़ारिश करने का ही हक़ है । खता मुआफ़ हो, नवाब साहब बहादुर ने यह भी फरमाया है कि महेन्दरगज का इस्तक़बाल करने के लिए वो खुद तीन दिन तक इन्तज़ार करने के बाद गढा-मडले के बाहर जल्वा-अफरोज़ होंगे ।

अधरसिंह—अकेले या अपनी फौज के साथ ?

हैदर अली—अब हुजूर ! जिस तरह आफताब के साथ रौशनी रहती है उसी तरह नवाब साहब बहादुर जिधर भी तशरीफ ले जायेंगे उधर ही उनकी फौज जायगी ।

अधारासिंह—(दृढ़ता से) हूँ । तो इसके मानी यह है कि तुम्हारे नवाब साहब बहादुर को महेन्द्रगज भेट किया जाय और अगर तीन दिन के बाद यह नहीं हुआ तो नवाब साहब बहादुर खुद फौज लेकर गढा मडले पर चढाई करेगे ।

हैदर अली—(बिनम्रता से) अब हुजूर ! इसके मुतअल्लिक कुछ ज़ियादह अर्ज करना इस नाचीज के लिए मुनासिब न होगा ।

वीरनारायण—बात बिलकुल साफ और सीधी है । यह एक धमकी और चुनौती है । यह लडाई लडने का एक बहाना है ।

अधारासिंह—हैदरअली ! यह बात पहले भी नवाब साहब बहादुर की तरफ से कही जा चुकी है जब वो पजहजारी मनसबदार नहीं थे । पहले इसका सिर्फ इशारा किया गया था । अब बात साफ ढग से कही गई है ।

हैदर अली—तब तो हुजूर ! उस पर गौर करना लाजमी है । बज्जाते-खुद यह नाचीज सियासी मुआमलात मे इशारे को ना-काफी समझता है । हुजूर ने उस इशारे को ना-काबिले-गौर समझ कर अपनी सियासत की बहुत ऊँची मिसाल पेश की है । लेकिन इस वक्त यह नाचीज अपने नवाब साहब बहादुर की साफगोई की दाद का स्वास्तगार है । जवाबे-मजमून यह नाचीज ही लिख लेगा ।

अधारासिंह—हैदर अली ! तुम्हे और कुछ कहना है ?

हैदर अली—और कुछ नहीं, हुजूर । यह बन्दा हुजूर के अल्ताफो-करम का मुहताज है ।

[एक सैनिक का प्रवेश]

सैनिक—महाराज की जय हो ! कल महाराज ने जिस षड्यंत्र को तोड़ा है उस सबध में महाध्यक्ष कर्णसिंह आपकी सेवा में कुछ निवेदन करने की आज्ञा चाहते हैं ।

अधारासिंह—उन्हे शीघ्र ही यहाँ भेजो ।

हैदर अली—तो गरीब परवर जो हुक्म फरमाएँ उसे ब-सरो-चश्म में नवाब साहब बहादुर की खिदमत में अर्ज करूँ ।

अधारासिंह—तुम अभी ठहरोगे हैदर अली ! बात अभी पूरी नहीं हुई ।

वीरनारायण—हैदर अली ! कल से महेन्द्रगज का कही पता नहीं है । हमारे राज्य की व्यवस्था में कही भी किसी प्रकार की शिथिलता नहीं रही है । कुछ दिनों से जब से, तुम लोग यहाँ आने लगे हो हमारे यहाँ कभी-कभी ऐसी बातें हो जाया करती हैं, जिन्हें हम कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकते ।

हैदर अली—इस नाचीज से तो कोई गुस्ताखी कभी नहीं हुई, गरीब परवर !

[महाध्यक्ष कर्णसिंह का प्रवेश]

कर्णसिंह—महामात्य की जय हो !

अधारासिंह—महाध्यक्ष कर्णसिंह !

कर्णसिंह—हाँ महामात्य ! आपकी सेवा में यह निवेदन करना चाहता हूँ कि कल आपने षड्यंत्र के सात बदियों को दंडित किया था । जब दुष्टसाध्य ने दंड देने की तैयारी की तो दंडित व्यक्तियों में से एक ने मृत्यु-भय से अपना दोष स्वीकार कर लिया ।

अधारासिंह—दोष स्वीकार कर लिया ? इसीलिए मैंने मृत्यु-दंड की व्यवस्था दी थी । ठीक है, कौन है वह ? उसका क्या नाम है ?

कर्णसिंह—उसका नाम गडा सेन है, महामात्य !

वीरनारायण—तुम काँप क्यों उठे, हैदर अली ?

हँदर अली—(सम्हलते हुए) अँअँअँअँ, कौपता नहीं हूँ, गरीब परवर ।

मेरे जिस्म का एक एक रोयाँ हुजूर का नाम ले रहा है ।

अधरारसिह—(कुछ हँस कर) बहुत खूब । उस रोएँ की जबान भी अभी खुल जायगी । (कर्णसिह से) हाँ तो महाध्यक्ष । उसका नाम गडा सेन है ?

कर्णसिह—हाँ महामात्य ।

अधरारसिह—अच्छा, वह कुछ समय तक कुबेरगज का महावत भी तो रह चुका है । उसने अपना दोष स्वीकार कर लिया ?

कर्णसिह—हाँ, महामात्य ।

अधरारसिह—विवरण दो ।

कर्णसिह—विवरण देने में असमर्थ हूँ, महामात्य । अनेक बार पूछने पर भी उसने अपना अपराध विस्तार से नहीं कहा । वह कहता है कि महामात्य के सामने ही वह अपना अपराध निवेदन करेगा ।

अधरारसिह—उसे तुम अपने साथ लाए हो ?

कर्णसिह—हाँ, महामात्य । वह यही द्वार पर उपस्थित है ।

अधरारसिह—उसे मेरे सामने उपस्थित करो ।

कर्णसिह—जो आज्ञा । (प्रस्थान)

अधरारसिह—(हँदर अली से) तो हँदर अली । तुम काँप नहीं रहे थे ?

तुम्हारे जिस्म का एक एक रोयाँ राजकुमार का नाम ले रहा था !

हँदर अली—हुजूर, दरख्त अपनी गिजा जमीन से जरूर लेता है मगर उसका सर हमेशा आसमान के कदमों के नीचे रहता है, उसी तरह हुजूर । मेरा आबो-दाना जनाब नवाब साहब बहादुर के हाथों में जरूर है लेकिन मेरा सर तो हुजूर के कदमों के नीचे है । हँहँहँहँहँ, हुजूर के कदमों के नीचे है ।

बीरनारायण—महामात्य । इस षड्यंत्र-उद्घाटन और अपराध-स्वीकार किए जाने की सूचना मैं शीघ्र ही माँ को देना चाहता हूँ ।

अधारसिंह—हाँ, अवश्य ही दे देनी चाहिए। इस समय तक दुनकी पूजा भी समाप्त हो गई होगी।

वीरनारायण—मैं जाता हूँ। प्रणाम। (प्रस्थान)

अधारसिंह—हाँ जाइए। (ठहर कर) पर, हाँ, सुनिए राजकुमार। महारानी की सेवा में यह भी निवेदन कर देना कि यदि उन्हें कुछ अवकाश हो तो कुछ देर के लिए यहाँ भी आने का कष्ट करेगी।

वीरनारायण—अवश्य ही निवेदन कर दूँगा। प्रणाम। (प्रस्थान)

अधारसिंह—(हँवर अली से) हँवर अली, गडा सेन को तुम जानते हो ?

हँवर अली—गरीब परवर, हुजूर के खादिमों को जानना भी बायसे-फर्र है। यो तो यह नाचीज़ गडा सेन की पहिचान का हकदार नहीं ताहम उसका नाम बहुत बार सुना है और हुजूर नाम भी कितना अच्छा है। गडा सेन। गडा सेन। हजारों में अच्छा नाम है, हुजूर, गडा सेन।

[महामात्य कर्णसिंह का गडा सेन के साथ प्रवेश। गडा सेन के हाथ ज़ज़ीरो से कसे हुए हैं, अतः जब वह भावावेश में बात करता है तो हाथ हिलने से ज़ज़ीर का शब्द होता है। वह आते ही महामात्य के पैरों के पास गिर पड़ता है और उसकी ज़ज़ीरें झनझना उठती हैं।]

गडा सेन—(करुण स्वर से) महाराज। महाराज। मुझे बचाइए। मुझे पाप से बचाइए। मैं पापी हूँ, विश्वासघाती हूँ, मैंने आपका बहुत बड़ा अपराध किया है, मुझे नरक में भी जगह नहीं मिलेगी। नहीं मिलेगी। मैं पापी हूँ। मैं पापी हूँ, महाराज। (सिसकने लगता है।)

अधारसिंह—गडा सेन।

गडा सेन—महाराज। मैंने महारानी दुर्गावती का नमक खाया पर उस नमक का मैंने बड़ा अपमान किया। जिस माँ ने मेरी परवरिश की, उसी माँ की गोद में मैंने अगारे भर दिये। महाराज।

ऐसा पापी दुनियाँ में कही न होगा । पूरब जनम के पापो से मेरी मति भ्रष्ट हो गई । मुझे बचाइए । मेरे पापो से मुझे बचाइए । (सिसकियाँ) ।

अधरारसिंह—सावधान बनो, गंडा सेन । (गंडा सेन की सिसकियाँ बन्द होती हैं ।) स्पष्ट कंठ से अपनी बात कहो । (महाध्यक्ष कर्णसिंह से) इसे खड़े होने के लिए कहो, महाध्यक्ष ।

कर्णसिंह—गंडा सेन । खड़े होकर महामात्य के सामने अपना अपराध स्वीकार करो ।

[गंडासेन खड़ा होता है । उसकी ज़जोरें बज उठती हैं ।]

गंडा सेन—महाराज । मैं माफी नहीं चाहता । मौत से थोड़ा भी नहीं डरता । आप चाहे तो इसी दम तलवार से मेरा गला कटवा दें । पर मैं आपके सामने अपना पाप कह कर मर जाना चाहता हूँ । जिससे मेरा प्रायश्चित्त हो जाय और मेरा परलोक न बिगड़ने पाय ।

अधरारसिंह—हाँ, बोलो तुम क्या कहना चाहते हो ?

गंडा सेन—महाराज । आपके सामने अपना अपराध कह देना मुझे नरक से बचा देगा । दो दिनों तक लगातार जागने के बाद कल शाम को मुझे नींद आ गई । मैंने सपने में देखा कि महारानी दुर्गावती महेन्द्रगज हाथी पर बैठ के जा रही है । रेशमी कपड़े पहने हैं, सिर पर मुकुट, हाथ में तलवार, माथे पर रक्त-चन्दन की खौर, उनके उजले शरीर पर बड़ी भली मालूम दे रही थी । आप भी महाराज । उनके साथ-साथ घोड़े पर सवार होके जा रहे हैं ।

अधरारसिंह—अपनी बातें संक्षेप में कहो ।

गंडा सेन—महाराज, संक्षेप ही में कहूँगा । तो महारानी महेन्द्रगज पर बैठ कर आगे-आगे जा रही हैं । मैं महावत बन कर उनका हाथी चला रहा हूँ । महाराज, न जाने महेन्द्रगज को क्या सूझा कि

उसने अपनी सूँड से मुझे पकड़ कर आसमान में फेंक दिया और मैं सितारो में उलझता हुआ जैसे ही जमीन पर गिरा तो मेरे हाथ-पैर टूट गए । मैं जोर से कराहने लगा । आप घोड़े से उतर गए । महारानी भी महेन्द्र गज से उतर पड़ी और उन्होंने मुझे गोद में ले लिया । फिर अपने माथे का रक्त-चन्दन अपनी हथेली में लिया और मेरे टूटे हुए हाथ-पैरो पर अपना हाथ फेर दिया । मेरे हाथ-पैर बिलकुल अच्छे हो गए । महाराज ! उसी वक्त मेरी नीद खुल गई । मैं रोने लगा और सोचने लगा कि जो महारानी अपनी प्रजा के साथ बच्चे की तरह ममता रखती है, उन्हीं महारानी के साथ मैंने विश्वासघात किया । महारानी के सामने जाने की मेरी हिम्मत नहीं है । इसलिए महाराज ! आपके सामने ही अपने पाप का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ । फिर चाहे आप मुझे मौत की सजा क्यों न दे दें ।

अधरसिंह—अपने अपराध को साफ शब्दों में कहो, गंडा सेन !

गंडा सेन—महाराज ! वही बात कह रहा हूँ । मैंने घोर अपराध किया है । महेन्द्रगज के गायब करने में मेरा ही हाथ रहा है । आज जब मैं अपने चारों तरफ देखता हूँ तो मेरे सामने अंधेरा ही (उसकी नजर हैदर अली पर पड़ती है) ऐ ! क्या हैदर अली ? ये हैदर अली ? महाराज, ये हैदर अली हैदर अली ! तुम इधर पहुँच भी गए ? चोर ! दगाबाज ! तुमने मुझे बरगलाया और और तुम मुझे नवाब आसफ खा का सदर फीलवान बनवाओगे ?

हैदर अली—अरे, अरे, भाई गंडा सेन ! तुम तुम वल्लाह क्या कह रहे हो ? मैं मैं

गंडा सेन—चुप रहो । हैदर अली !

हैदर अली—अरे अरे वह हैदर अली कोई दूसरा होगा । वह

वह कोई दूसरा हैदर अली होगा । मैं मैं तो तुम्हारा पुराना दोस्त

गंडा सेन—महाराज । यही हैदर अली है । एक रोज़ रात में चुपके से आया और मुझसे कहने लगा कि कड़ा मानिकपुर के नवाब आसिफ खाँ बहादुर को शहशाह अकबर बादशाह ने पज हजारी मनसबदार बनाया है । उनकी शानो शौकत का नवाब दुनियाँ में कहीं देखने को नहीं मिलता ।

अधरसिंह—(तीव्रता से) उसके बाद क्या हुआ ?

गंडा सेन—महाराज । हैदर अली ने मुझसे कहा कि महारानी जी के पास जो सफेद हाथी महेन्द्रगज है वह नवाब आसिफ खाँ को बेहद पसन्द है । पज हजारी मनसबदार के पास वैसा हाथी रहना भी चाहिए, इसलिए तुम उस हाथी को गायब कर दो । तुम्हें नवाब साहब सदर फीलवान बना कर हमेशा अपने साथ रखेंगे ।

अधरसिंह—नवाब साहब का सदर फीलवान । फिर तुमने वह हाथी गायब कर दिया ?

गंडा सेन—नहीं कर सका, महाराज । हैदर अली चाहता था कि वह हाथी मैं रातोंरात कड़ा मानिकपुर ले जाऊँ लेकिन कोट के चारों दरवाजों पर कड़ा पहरा था इसलिए मैंने सिंगौरगढ़ के पच्छिम में साल बन में ले जाकर बाँध दिया है ।

अधरसिंह—(कर्णसिंह से) महाध्यक्ष, अश्व-साधनिक के पास साल बन जाने की सूचना भिजवा दो ।

कर्णसिंह—जो आज्ञा । (प्रस्थान)

हैदर अली—(गिड़गिड़ाते हुए) हुजूर के इकबाल से

अधरसिंह—तुम चुप रहो, हैदर अली । गंडा सेन की बात पूरी होने दो ।

हैदर अली—हुजूर । अगर आफताब को भी रोकना चाहेगे तो हुजूर ।

वह भी रुक जायगा । मैं तो हुजूर की जूतियों की खाकू

अधरारसिह—(गडा सेन से) तो तुम इस तरह बहकाए गए, गडा सेन ?

गडासेन—हाँ, महाराज ! हैदर अली ने मुझसे यह भी कहा कि नवाब साहब बहादुर ने महेन्दरगज लेने का पक्का इरादा कर लिया है । पहले मैं चापलूसी करता हुआ नवाब साहब बहादुर का इरादा जाहिर करूँगा । एक तो दीवान साहब महेन्दर गज आसानी से देगे नही, अगर उन्होंने देने की बात कही भी तो महेन्दर गज के गायब हो जाने से वे अपना वायदा पूरा नही कर सकेगे । दोनो हालतो मे नवाब साहब बहादुर गढा मडले पर चढाई करके न सिर्फ हाथी बल्कि बहुत सी दौलत भी लूट सकेगे । मुझसे कहा कि उस लूट मे तुम्हारा भी हिस्सा होगा, नही तो गढा मडले के साथ तुम भी धूल मे मिला दिए जाओगे । अपनी जान देने और सदर फीलवान होने के साथ भारी दौलत पाने के बीच अपना फैमला कर लो ।

अधरारसिह—और तुम सदर फीलवान बनने के साथ भारी दौलत पाकर अपनी मातृभूमि को जलता हुआ देखते ?

गडा सेन—महाराज ! महारानी दुर्गावती और आपका सपना देखने के बाद मुझे घोर पछतावा हुआ और मैं सारे समय आँसू बहाता रहा । महाराज ! मैंने घोर पाप किया है, मुझे इस पाप से बचाइए ! इस पाप से बचाइए ! नही तो मेरी आत्मा परलोक मे भी तडपती रहेगी ! मुझे बचाइए ।

[महाध्यक्ष कर्णसिह का प्रवेश]

कर्णसिह—महाराज, अश्व-साधनिक को साल वन जाने की सूचना भिजवा दी गई ।

अधरारसिह—महाध्यक्ष, गडा सेन को इस समय बदीगृह भिजवाने की व्यवस्था करो । इसके दड की उचित व्यवस्था बाद में होगी ।

कर्णसिंह—झो आजा । (गडा सेन से) गडा सेन, बदी गृह चलो ।

गडा सेन—(अधरसिंह से) महाराज ! मैंने अपने मन का पाप आपसे कह दिया । अगर अब मौत की सजा भी मिले तो मैं सुख से मर सकूंगा । महारानी जी की सेवा में भी मेरा प्रणाम पहुँचे । महाराज को प्रणाम । अब मैं सुख से मर सकूंगा, मर सकूंगा ।

[कर्णसिंह के साथ गडा सेन का प्रस्थान]

अधरसिंह—(सोचते हुए) तो षड्यंत्र यह था । जिसमें मुख्य रूप से भाग लेने वाले हैं हैदर अली और गडा सेन । (हैदर अली से) तो हैदर अली ! यह तुम्हारा ही काम था कि तुमने गडा सेन की स्वामि-भक्ति में आग लगाई । तुमने ही उसे सुनहले सपने दिखलाए । उसे बहकाया और राज-द्रोह किया और उसमें भाग लिया । तुम्हारे लिए बहुत भयानक दंड की व्यवस्था करनी होगी ।

हैदर अली—हुजूर का फैसला सर आँखों पर होगा ।

अधरसिंह—गडा सेन को तो बदीगृह भेजा गया, तुम्हें कहाँ भेजा जाय ?

हैदर अली—जहाँ हुजूर के कदमों का साया पड़े ।

अधरसिंह—तुम्हें अपने बारे में कुछ कहना है ?

हैदर अली—यह नाचीज़ हुजूर का वक्त जाया नहीं करना चाहता ।

दुनियाँ के लोगो को जो कुछ अच्छा लगता है, हुजूर ! वो लोग वही कहते हैं । आजकल किसी की बात काटना खुद अपनी ज़बान कटवाना है ।

अधरसिंह—तो अपनी ज़बान कटवाने में तुम्हें कोई एतराज़ नहीं है ?

हैदर अली—हुजूर के हाथों ज़बान क्या सर भी कट जाय तो यह मेरी खुश-किस्मती का बायस होगा ।

अधरसिंह—जो कुछ गडा सेन ने कहा उसके मुतअल्लिक तुम्हें कुछ कहना है ?

हैंबर अली—हुजूर ! नमक से बढकर जबान की कोई गिज़ा नहीं है ।
जबान जो नमक खाती है उसी नमक की बात बोलती है ।
हुजूर ! अगर इसे कुसूर समझते हैं तो बन्दा दुनियाँ का सब से
बडा कुसूरवार है ।

अधारसिंह—लेकिन नमक खाने वाली जबान जो कुछ भी कहे सचाई से
कहे, तलवार की काट न करे ।

[अगरिक्षका पाडवी का प्रवेश]

पाडवी—महामात्य की जय हो ।

अधारसिंह—कौन अगरिक्षका ? पाडवी ?

पाडवी—हा, महामात्य ! आपकी सेवा मे मुझे यह सूचना निवेदन
करनी है कि महारानी अपनी पूजा समाप्त कर चुकी है ।
अंतिम प्रार्थना शिव-तांडव स्तोत्र सुन रही है । यहाँ शीघ्र
ही आने वाली है ।

अधारसिंह—इस समय की घटनाएँ उनकी प्रतीक्षा भी कर रही है ।
हम महारानी का स्वागत करने के लिए प्रस्तुत है ।

[पाडवी का प्रस्थान । नेपथ्य में शिव-तांडव स्तोत्र नारी-कंठ के
सम्मिलित स्वर में सुन पडता है ।]

जटाटवी गलज्जल प्रवाहपावित स्थले ।
गलेवलव्य लबिता भुजग तुग मालिकाम् ॥
डमड् डमड् डमड् डमभिनाद वड्डमर्वयं ।
चकार चड ताडव तनोतु न. शिवः शिवम् ॥

प्रचंड बाडवानल प्रभा शुभ प्रचारिणी ।
महाऽष्ट सिद्धि कामिनी जना बहूत जल्पनी ॥
विमुक्त वाम लोचना विवाह कालिक ध्वनिः ।
शिवेति मंत्र भूषणं जगज्जयाय जायताम् ॥

[शख ध्वनि होती है । सम्मिलित स्वर से]

३ म हा रा नी दु र्गा व ती की जय !

[अगरक्षिका के साथ महारानी दुर्गावती का प्रवेश । पीछे बीर-
नारायण ह ।]

अगरक्षिका—महारानी दुर्गावती की जय !

अधारासिंह—राजरानी दुर्गावती की सेवा में अधारासिंह का प्रणाम स्वीकार
हो ।

हैदर अली—राजरानी दुर्गावती की सेवा में हैदर अली का प्रणाम ईकार
हो ।

दुर्गावती—महामात्य ! भगवान भैरव को आज पचास नवीन हाथियों
ने दुग्ध से अभिषेक किया है । इन नवीन हाथियों का विवरण
मैं जानना चाहती हूँ ।

अधारासिंह—महारानी, यह आपके शासन की समृद्धि है कि जन-साधारण
चाँदी के सिक्कों में भूमि-कर न चुका कर सोने की मोहरों और
हाथियों में चुकाते हैं । कल तीन भूमिधरों ने अपना कर इन
पचास हाथियों में चुकाया है ।

दुर्गावती—इन हाथियों को भी सैनिक-शिक्षा दी जाय और भविष्य के
युद्ध में ये हाथी मेरे साथ महेन्द्रगज के सहायक बन कर साथ
रहेगे ।

अधारासिंह—जैसी आज्ञा ।

दुर्गावती—किन्तु महेन्द्रगज के द्वारा आज भगवान भैरव का अभिषेक
नहीं हुआ ?

[महामात्य चुप है ।]

दुर्गावती—महामात्य ! आप चुप क्यों हैं ? महेन्द्र गज के द्वारा आज
भगवान भैरव का अभिषेक क्यों नहीं हुआ ?

अधारासिंह—महारानी, महेन्द्रगज नहीं है ।

दुर्गावती—(तीव्रता से) महेन्द्रगज नहीं है ? मेरा प्रिय हाथी महेन्द्रगज नहीं है ? (बीरनारायण से) नारायण ! भगवान् भैरव के पूजन में तुम आए थे । तुमने मुझे सूचना नहीं दी ?

बीरनारायण—तुम पूजन में व्यस्त थी मा । मैंने विघ्न डालना उचित नहीं समझा ।

दुर्गावती—यह कोई रहस्य तो नहीं है ? महामात्य । जिस राज्य में घटनाएँ रहस्य का अण्डगुणन अपने मुख पर डाल लेती हैं, उस राज्य की दृष्टि अपने पैरों तक ही सीमित रह जाती है, अपने अंग भी नहीं देख सकती । मेरी राजनीति में रहस्य के लिए स्थान नहीं है । रहस्य कला के लिए वरदान हो सकता है, किन्तु राजनीति के लिए अभिशाप है ।

अधारासिंह—महारानी, कल से मैं इसी रहस्य का उद्घाटन करने में व्यस्त हूँ कि महेन्द्रगज कहाँ है ।

दुर्गावती—कहाँ है ?

अधारासिंह—साल वन में ।

दुर्गावती—साल वन में ? क्यों ? दुर्गावती का सिंगौरगढ़ अन्न और वृक्षों से शून्य हो गया ?

अधारासिंह—महारानी, यह सब एक भयानक भविष्य की भूमिका है । कडा मानिकपुर का नवाब आसफख़ाँ जब से पज हजारी मनसबदार हुआ है तब से वह महेन्द्रगज को अपना हाथी समझना चाहता है ।

दुर्गावती—(बीच ही में) महामात्य ।

अधारासिंह—क्षमा करे, महारानी, वह उस हाथी को पाने के लिए इतना प्रयत्नशील है कि उसने हमारे राज्य में न केवल षड्यंत्र करना प्रारंभ किया है वरन् हमारी प्रजा को भी पद-वृद्धि का लालच देकर बहकाना शुरू कर दिया है और उसी का यह परिणाम है कि

महेन्द्रगज आज भगवान भैरव का अभिषेक नहीं कर सका ।

दुर्गावती—आपने उस रहस्य का उद्घाटन किया ?

अधरारसिंह—हाँ, महारानी, सात षड्यंत्रकारी पकड़े जा चुके हैं । एक षड्यंत्रकारी ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है । उसी से पता चला कि महेन्द्रगज को चोरी से कड़ा मानिकपुर ले जाने की योजना थी किन्तु वह योजना सफल नहीं हो सकी और इसलिए महेन्द्र गज साल वन में ही छिपा दिया गया ।

दुर्गावती—षड्यंत्रकारियों को प्राणदंड दिया जाय । अन्याय का दमन करने में राजनीति को कोमल नहीं होना चाहिए । जहर का नाश करने के लिए जहर की ही आवश्यकता पड़ती है । हाँ, जिसने अपना अपराध स्वीकार किया है उसका निर्णय कुछ कोमलता से अवश्य किया जा सकता है और यह निर्णय आप करेंगे ।

अधरारसिंह—जैसी आज्ञा, महारानी ।

दुर्गावती—और साल वन की ओर किसी को भेजा गया ?

अधरारसिंह—महाध्यक्ष कर्णसिंह को आज्ञा दे दी गई है कि वह अश्व साधनिक को तुरत साल वन भेज कर महेन्द्र गज को यहाँ ले आए ।

दुर्गावती—मैं आज संध्या के पूर्व ही महेन्द्र गज को देखना चाहती हूँ ।

अधरारसिंह—वह इसके पहले ही आ जायगा, महारानी । पर अभी एक बात का निर्णय करना शेष है ।

दुर्गावती—निवेदन करो ।

अधरारसिंह—कड़ा मानिकपुर के नवाब आसफ खाँ की ओर से यह दूत आया है, हैदर अली ।

हैदर अली—बुलन्द इकबाल महारानी को परणाम ।

दुर्गावती—क्या फिर नवाब साहब की ओर से किसी बात का इशारा किया गया है ?

अधारासिंह—हाँ, महारानी ! इस दूत के द्वारा यह कहलाया गया है कि यदि तीन दिन के भीतर महेन्द्र गज कडा मानिकपुर नहीं भेज दिया गया तो नवाब साहब गढा मडले पर चढाई कर देगे ।

दुर्गावती—इस तरह का सदेश तो शायद पहले भी भेजा गया था ।

अधारासिंह—सत्य है, महारानी ! पर पहले केवल मकेत से यह बात कही गई थी, प्रार्थना के ढग से प्रस्ताव किया गया था, अब समय की एक अवधि निश्चित कर दी गई है और चढाई करने की धमकी भी दी गई है ।

दुर्गावती—क्या प्रस्ताव है ?

अधारासिंह—यदि तीन दिन के भीतर महेन्द्रगज मानिकपुर नहीं भेज दिया गया तो नवाब साहब गढा मडले पर चढाई कर देगे ।

दुर्गावती—तीन दिन के भीतर ?

अधारासिंह—हाँ, महारानी !

दुर्गावती—(दुहराते हुए) यदि महेन्द्र गज कडा मानिकपुर नहीं भेज दिया गया तो नवाब साहब चढाई कर देगे ।

अधारासिंह—हाँ, महारानी !

दुर्गावती—इस सबध मे हमारा रुख नवाब साहब को पहले ही समझ लेना चाहिए था लेकिन यदि वे न समझे हो तो यह कहला दीजिए महामात्य, कि नवाब साहब की शक्ति देखने की इच्छा हमारे मन मे भी है । वे महेन्द्रगज के रूप मे कोई बहाना खोजने की कोशिश न करे । वे बडी प्रसन्नता से गढा मडले पर आक्रमण करे । हम उचित ढग से उनका स्वागत युद्ध-भूमि मे करेगे ।

अधारासिंह—सत्य है, महारानी !

दुर्गावती—और महेन्द्र गज दुर्गावती का ही महेन्द्र गज रहेगा, वह दुर्गावती के जीते जी किसी दूसरे का नहीं हो सकता । नवाब साहब महेन्द्र गज के बहाने ही सही सिंगौर गढ़ पर प्रसन्नता पूर्वक

अपनी फौज लेकर चढाई करे । हम भी युद्ध के लिए तैयार रहेगे ।

अधरारसह—आपका आदेश सर्वमान्य है, महारानी । आपने दर्जनो बार कवच धारण कर महेन्द्र गज पर बैठ कर सेना के आगे भगवती दुर्गा की भाँति युद्ध किया है । आपका शुभ नाम महारानी दुर्गावती सार्थक है । (हैदर अली से) तुमने महारानी का आदेश सुना, हैदर अली ?

हैदर अली—बजाते खुद मैं अपने नवाब साहब बहादुर के इरादो से इत्तफाक नही रखता । सदरे आली ! लेकिन अपने मालिक के रूबरू यह नाचीज क्या अर्ज कर सकता है ? (सिर खुजलाता है ।)

अधरारसह—महारानी के सामने अपना सिर खुजलाने की बेअदबी न करो, हैदर अली ।

हैदर अली—मुआफी का स्वास्तगार हूँ, हुजूरे आली ।

अधरारसह—(सहसा) अच्छा । तुम्हारी टोपी से गिरा हुआ यह रगीन कागज कैसा ?

हैदर अली—कुछ नही, हुजूर ।

अधरारसह—(अंगरक्षिका से) अंगरक्षिका पाडवी ! वह कागज उठाओ ।

पाडवी—जो आज्ञा, यह लीजिए । (कागज उठा कर महामात्य को बेती है ।)

अधरारसह—अच्छा, इस पर नवाब आसफ खाँ बहादुर पज हज्जारी की मुहर भी है ?

दुर्गावती—नवाब आसफ खाँ पज हज्जारी की मुहर ?

अधरारसह—हाँ, महारानी । मैं पढ़ कर अभी आपको सुनाता हूँ ।

दुर्गावती—अच्छा, तो सिर खुजलाने के बहाने यह पत्र हैदर अली द्वारा गिराया गया । राजनीतिक बाते स्पष्टता के साथ सामने क्यों नही लाई जाती ? क्या नर्तकी की भाँति राजनीति

भी छल-छन्दो के साथ अपना शृंगार करना आवश्यक समझती है ?

हैदर अली—मलकए आलम ! हुजूर ! आपके तेवर देख कर इस नाचीज़ को नवाब साहब बहादुर का खत पेश करने की हिम्मत नहीं पड़ी । मेरे सर के खुजलाते ही शायद वह खत भी काँप कर ज़मीन पर गिर पड़ा ।

दुर्गावती—काँपने की बात नहीं है, हैदर अली ! अपने नवाब साहब से जाकर कहो कि दुर्गावती ने अपने शासन के पन्द्रह वर्षों में केवल युद्ध में लड़ना ही सीखा है । हमारे सैनिकों को युद्ध का अभ्यास कराने की जो आवश्यकता पड़ती है उसके लिए नवाब साहब की चढाई हमारी चिन्ता का विषय नहीं है, हमारे उत्साह का विषय है ।

अधरसिंह—(क्रोध से काँपते हुए) नीच, दुष्ट, नारकी, तेरी यह हिम्मत ! (हैदर अली से) हैदर अली ! इस कागज़ के साथ हम तुम्हें भी जला देंगे । (महारानी से) महारानी ! हम यह सहन नहीं कर सकेंगे, सहन नहीं कर सकेंगे । (पत्र फेंक देते हैं ।)

दुर्गावती—शान्त, शान्त, महामात्य ! यह कैसा कागज़ है ! पढ़ कर सुनाओ ।

अधरसिंह—महारानी ! मुझे क्षमा करे । मैं यह पत्र नहीं पढ़ सकूंगा । इसे पढ़ना मेरे शरीर में ज्वालामुखी की आग भड़का देना है ।

दुर्गावती—पांडवी, तुम यह पत्र पढ़ो ।

पांडवी—जो आज्ञा । (पत्र उठा कर पढ़ती है ।)

गढ़ा मंडले की मलका महारानी दुर्गावती को आसफ खाँ का सलाम कुबूल हो । अरसे से आपकी हुकूमत की शहरत की रौशनी दूर दूर तक फैली हुई है और उसे देख कर मुझे जो खुशी हो रही है उसका जिक्र बयान से बाहर है । आप जैसी मलका

जिस मुल्क के तख्त पर ग़ैबक अफ़रोज़ होगी आफ़ताब भी उस मुल्क के जल्वे का मुहताज होगा ।

मुझे इस बात का अज़हद रज है कि आपको खुद मुल्क का इन्तजाम करने में इतनी जहमते ग़वारा करनी पड़ती है । अगर आप मुझे अपनी ख़िदमत करने का मौका दे तो मैं दिलोजान से हाज़िर हूँ और आपके नूर से हमारे हरम को जो इज़्ज़त मिलेगी उसकी मिसाल

दुर्गावती—(चीख़ कर बीच ही में) सावधान ! (दाँत पीसते हुए) लपट और विलासी यवन ! अपने हरम को हज़ारों सतियों के खून से नहला कर अब उसे आग से रँगना चाहता है ? महामात्य ! महाध्यक्ष को अभी सूचित करो कि युद्ध की तैयारी करे । सैनिकों को अभी आज्ञा दो कि वे अपने शस्त्र सँभाल कर तैयार हो जावे और और

अधरसिंह—हम इस अपमान का बदला निश्चय ही लेंगे, महारानी !

दुर्गावती—महामात्य ! सभी सैनिक महाकाल भैरव के समक्ष एकत्रित हो कर युद्ध की शपथ ले और एक बार फिर रण चड़ी का आवाहन हो ।

अधरसिंह—महारानी ! मैं आज अपने जीवन भर की सेवाओं की शपथ लेकर आपके सामने यह प्रण करता हूँ कि महारानी के अपमान का प्रतिकार मैं अपने शरीर के रक्त की अंतिम बूंद देकर भी करूँगा । अधरसिंह के पीछे उसकी अटूट राजभक्ति का ही आधार रहा है । जिस दिन इस आधार पर आँच आएगी उस दिन अधरसिंह इस ससार में नहीं रहेगा । महारानी ! इस तलवार की साक्षी देकर (तलवार निकाल लेता है ।) मैं यह घोषणा करता हूँ कि गढ़ा मडले के राज्य की सीमा इसी तलवार की भाँति अखंड और अविभाजित रहेगी और जब तक यह तलवार मेरे

हाथ मे है तब तक किसी भी आक्रमणकारी का प्रवेश महारानी के राज्य की सीमा मे न होगा । हैदर अली ! तुम्हारे नवाब साहब ने एक सिहिनी को युद्ध का निमंत्रण दिया है जिसके पास साहस का कवच है और शक्ति की तलवार है ।

हैदर अली—(घबरा कर) मे मे मे इसकी ताईद करता हूँ, वजीरे आज्ञाम ।

[सैनिक का प्रवेश]

सैनिक—(प्रणाम कर) महारानी जी की जय हो । सेवा मे महाध्यक्ष उपस्थित होने की अनुमति चाहते है ।

दुर्गावती—इस समय उनकी आवश्यकता भी है । उन्हें शीघ्र ही यहाँ भेजो ।

सैनिक—जो आज्ञा । (प्रस्थान)

दुर्गावती—हैदर अली ! तुम्हारे नवाब साहब यह समझते है कि वे एक अकेली नारी को युद्ध मे पराजित कर देगे, पर यह उनकी भूल है । मेरी एक बाहु कोटि बाहु है और एक कृपाण कोटि कृपाण है । मे अपनी प्रजा की जननी हूँ और जननी की शक्ति ससार मे सबसे महान है । तुम अपने नवाब साहब से कहो कि अपनी पत्र हजारी शक्ति को वे जितनी भयानकता से एकत्रित कर सकते है, करे और युद्ध के मैदान मे आवे और जो पत्र तुम लाए हो उसका उत्तर तलवार से दिया जावेगा, लेखनी से नही । तुम दूत हो नही तो इस पत्र का सारा जहर तुम्हारे शरीर मे भर दिया जाता ।

[महाध्यक्ष कर्णसिंह का प्रवेश]

कर्णसिंह—महारानी की जय हो । महेन्द्र गज शीघ्र ही साल वन से आपकी सेवा मे उपस्थित होगा ।

दुर्गावती—उसे उपस्थित होना चाहिए । जैसे ही वह आवे उसे युद्ध के लिए सुसज्जित करो । मे इस बार फिर उसी पर बैठ कर युद्ध

करूंगी । मैं इस बार अपने जीवन के अंतिम क्षण तक युद्ध करना चाहती हूँ ।

कर्णसिंह—जो आज्ञा ।

दुर्गावती—सिगौरगढ, मडला, चौरागढ और गढा की समस्त सेना अपने अपने चतुर्व्यूह में एकत्रित हो । मेरे पन्द्रह सौ हाथी, आठ हजार घुड़सवार और बीस हजार सैनिक युद्ध भूमि के लिए प्रस्तुत हो ।

कर्णसिंह—जैसी आज्ञा ।

दुर्गावती—जाओ । सब प्रबन्ध पूर्ण हो और युद्ध-तूर्य की घोषणा हो ।

कर्णसिंह—जो आज्ञा । (प्रस्थान)

दुर्गावती—महामात्य ! मेरे विष के बुझे बाणों की पुनः परीक्षा हो और मेरे कृपाण पर फिर से पानी चढ़ाया जाय ।

अधरसिंह—यह शीघ्र ही होगा, महारानी !

दुर्गावती—हैदर अली ! तुमने षड्यंत्र में भाग लिया है और तुम कलक-पूर्ण पत्र लाए हो । तुम्हारे दंड की क्या व्यवस्था की जाय ?

हैदर अली—मलकए आलम की सजा बसरोचरम मजूर होगी । यह नाचीज अपनी जान देकर भी महारानी का हुक्म बजा लाने में अपनी खुशकिस्मती समझेगा ।

दुर्गावती—हैदर अली ! हम लोग मर्यादा-पालन में विश्वास रखते हैं । तुम राजदूत हो इसलिए तुम्हें इस समय दंड नहीं दूंगी । तुम स्वतंत्र हो । जाओ । और अपने नवाब साहब को यही उत्तर देना कि नारी की शक्ति उसकी तपस्या में है । दुर्गावती तपस्विनी है । उसे बहिन समझोगे तो वह तुम्हें आशीर्वाद देगी पर यदि अपनी दृष्टि मैली करोगे तो वह तपस्विनी अपनी आग में तुम्हें जला देगी । और अगर वह नहीं जला सकी तो स्वयं जल कर भस्म हो जायगी । जाओ ।

हैबर अली—महारानी । यह जल्वा हिन्दोस्तान का जल्वा है । मैं नवाब साहब बहादुर से यही अर्ज करूँगा कि वह मल्कए आलिया को अपनी हमशीरा ही समझे । आपके अदल और मेहरबानी का हजार हजार शुक्रिया । बन्दा, खिदमत में आदाब बजा लाता है ।

[प्रस्थान]

[नेपथ्य में रण-वाद्य और तूर्य । वीरनारायण का प्रवेश]

वीरनारायण—माँ, महाध्यक्ष कर्णसिंह ने आपकी युद्ध-घोषणा प्रचारित करने के लिए अश्व-साधनिक को नगर में भेज दिया है । मैंने महेन्द्रगज और कुमारगज की रण-सज्जा के लिए आज्ञा दे दी है । युद्ध के मध्य में आपका महेन्द्रगज रहेगा और दाहिने भाग में मेरा कुमार गज ।

दुर्गावती—नारायण । महाकाल भैरव का अभिषेक हो । इस समय तुम्हारे पितामह और पिता नहीं हैं पर उनका सम्मिलित शौर्य तुम्हारे शरीर के प्रत्येक रोम में समा जावे और वश की सारी मर्यादा तुम्हारे कृपाण की धार की तेज़ी बन जावे ।

वीरनारायण—माँ । आपका आशीर्वाद सफल हो ।

दुर्गावती—महामात्य सैनिकों को आज्ञा दो कि आज हम सब महाकाल भैरव की शक्ति का आवाहन करेंगे और सिंगौर गढ़ की रक्षा प्राण देकर भी होगी ।

[अधरारसिंह और वीरनारायण का सम्मिलित स्वर]

म हा रा नी दु र्गा व ती की जय ।

[नेपथ्य में रण-वाद्य]

औरंगज़ेब की आखिरी रात

संकेत

जब मनोविज्ञान ने एकात्म भाव से इतिहास में प्रवेश किया तो औरगजेव की आखिरी रात का चित्र स्पष्ट हो गया । दुर्बल शरीर में महत्वाकांक्षा निराशा से वैसे ही मिल जाती है जैसे नदी की दो धाराएँ बीच की पतली भूमि को काट कर आपस में मिल जाती हैं ।

औरगजेव मुगल साम्राज्य के दीपक के बुझने के पूर्व का अंतिम उद्भास था । इस रूपक में उस अस्त होते हुए प्रकाश की समस्त किरणों को एकत्रित किया गया है ।

मनोविज्ञान का एकमात्र आधार औरगजेव के द्वारा लिखाए गए वे अंतिम पत्र हैं जो आज भी इतिहास की अमूल्य निधि हैं । ऐतिहासिक तथ्य, परिस्थिति वातावरण और तेजस्वी व्यक्तित्व में पोषित मनोविज्ञान ने जो दृश्य निर्मित किया है वह आखिरी रात का दृश्य होकर भी कभी समाप्त न होगा, ऐसा मेरा विश्वास है ।

नाटक के पात्र :

आलमगीर औरंगजेब —मुगल सम्राट्
जीनत-उन्निसा बेगम —आलमगीर औरंगजेब की पुत्री
करीम —सिपाही
हकीम
कातिब

स्थान —अहमदनगर का किला

काल —१८ फरवरी, सन् १७०७

समय —रात्रि के ३ बजे

अभिनय

यह नाटक अनेक बार 'आकाश वाणी' दिल्ली, लखनऊ, और पटना से प्रसारित हुआ। इसका गुजराती अनुवाद बंबई से प्रसारित हुआ। भूमिका अज्ञात है।

'आकाश वाणी' दिल्ली से प्रसारित इस नाटक की भूमिका इस प्रकार थी

आलमगीर औरगजेब— श्री एस० एस० एस० ठाकुर

जीनत-उन्निसा बेगम— „ विनोद कुकरेजा

करीम — „ रामअवतार शर्मा

हकीम — „ सैयद आवर

कातिब — „ इस्लामुद्दीन

औरंगज़ेब की आखिरी रात

[बीजापुर और गोलकुण्डा की शिया रियासतों पर विजय प्राप्त करने के बाद जब औरंगज़ेब ने मराठा का अन्त करने का निश्चय किया तो उन्हें अपनी असफलता स्पष्ट दीख पड़ने लगी।

उन्होंने जब छत्रपति शिवाजी के पुत्र शभाजी को सपरिवार बन्दी कर लिया और उनके सामने इस्लाम धर्म में दीक्षित होने का प्रस्ताव रक्खा, तो शभाजी ने घृणा के साथ प्रस्ताव को ठुकराते हुए औरंगज़ेब के प्रति अत्यन्त कटु शब्दों का व्यवहार किया।

फलस्वरूप शभाजी बड़ी निर्दयता के साथ कत्ल किये गए। उनके कत्ल होते ही मराठों में क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी। सत्रह वर्षों तक भयकर संघर्ष होता रहा। इधर मुगल सेना दिनोदिन विलासी बन रही थी। फलस्वरूप प्रत्येक लड़ाई में उसे बहुत अधिक हानि उठानी पड़ती थी।

सन् १७०६ में औरंगज़ेब ने देखा कि उनकी सेना अब अत्यन्त विभ्रंश-खलित और आलसी हो गई है। राज्य की आर्थिक दशा भी चिंताजनक हो रही है। लड़ाई की हानि 'जज़िया' कर से भी पूरी नहीं हो रही है। जलालुद्दीन अकबर के समय से सचित आगरा और दिल्ली के किलों की समस्त सम्पत्ति दक्षिण की लड़ाइयों में समाप्त हो चुकी है; तीन-तीन महीनों से सिपाहियों और सिपहसालारों का वेतन नहीं दिया गया है।

राज्य की इस दुर्व्यवस्था के साथ वे अब वृद्ध हो गए हैं। पहले जैसी शक्ति अब उनके शरीर में नहीं रही। उनका विजय-स्वप्न निराशा में तिरोहित हो चला है। उनकी चिन्ताएँ उन्हें चैन नहीं लेने देतीं। अन्त में हताश होकर वे अहमदनगर लौट आए हैं।

इस समय वे अहमदनगर के क़िल्ले में बीमार पड़े हुए हैं। उनका

शरीर टूट चुका है। उन्हे ज्वर और खाँसी है। इस समय उनकी अवस्था ८६ वर्ष की है। एक साधारण से पलंग पर लेटे हुए है। सिरहाने सफेद रेशम का तकिया है, जिसके दोनों बाजुओं में जरी की हलकी पट्टियाँ हैं।

वे एक सफेद रेशम की चादर कमर तक ओढ़े हुए हैं। दुबला-पतला शरीर। कटी-छटी सफेद डाढ़ी। नाक लम्बी किन्तु वृद्धावस्था के कारण कुछ झुकी हुई। वे सफेद लम्बा कुरता पहने हुए हैं, जो रेशमी तनी से दाहिने कन्धे पर कसा हुआ है। गले में मोतियों की एक बड़ी माला पड़ी हुई है जिसके मध्य में एक बड़ा नीलम जडा है। हाथ में तसबीह है।

आलमगीर की मुख-मुद्रा अत्यन्त मलीन और पश्चात्ताप से परिपूर्ण है। उनके दाहिनी ओर एक सुसज्जित पीठिका पर उनकी पुत्री जीनत-उन्निसा बेगम बैठी हुई है। उसकी आयु ४० वर्ष के लगभग है। देखने में सौम्य और आकर्षक। वह नीले रंग की रेशमी शलवार और प्याज्जी रंग की ओढनी से सुसज्जित है। गले में रत्नों की माला है और कमर में मोतियों की पेंटी कसी हुई है। उसके मुख पर भी भय और आशंका की रेखाएँ अंकित हैं।

कमरे में कोई विशेष सजावट नहीं है, किन्तु सारे वायुमंडल में एक पवित्रता है। पलंग के सिरहाने दो शमादान जल रही हैं। दूसरी ओर केवल एक है, जिससे आलमगीर की आँखों में चकाचौंध न हो। पलंग के दाहिने ओर जीनत-उन्निसा की पीठिका के समीप ही एक बड़ी खिड़की है, जिससे हवा का मन्द भोका आ रहा है। उससे घने अन्धकार के बीच में आकाश के तारे बिखाई पड़ रहे हैं।

आलमगीर के सामने कोने की ओर सोने के पिंजड़े में एक पक्षी बैठा हुआ है जो कभी-कभी अपने पख फटफटा देता है। पलंग से कुछ हट कर सिरहाने की ओर एक तिपाई है जिस पर बवा की शीशियाँ रखी हुई हैं। उसके समीप एक ऊँचे स्टैंड पर लम्बे मुँह वाली सोने की

सुराही है, उसमें गुलाबजल रक्खा हुआ है। उसके पास ही एक सोने का प्याला एक रेशमी कपड़े से ढका हुआ है।

परदा उठने पर आलमगीर कुछ क्षणों तक बेचैनी से खाँसते हैं, फिर एक गहरी और भारी साँस लेकर शून्य की ओर देखते हुए जीनत से कहते हैं :]

खाँसी ! एक लमहे के लिए नहीं रुकती कोई दवा उसे नहीं रोक सकती, जीनत ! कोई दवा उसे नहीं रोक सकती यह मौत की आवाज़ है। इसे कौन रोक सकता है ? [फिर खाँसते हैं।] मौत की आवाज़ !

जीनत—(धैर्य के स्वरो में) नहीं, जहाँपनाह ! आपकी खाँसी बहुत जल्द अच्छी हो जायगी। हकीमो ने

आलम—(बीच ही में) हकीमो ने हकीमो ने कुछ नहीं समझा। कुछ नहीं समझा, उन्होंने। यह खाँसी कोई मर्ज़ नहीं है, बेटी ! यह खाँसी सल्तनत के उखड़ने की आवाज़ है जो हमारे दम के साथ उखड़ना चाहती है। (मुँह बिगाड़ कर) उखड़े ! कहाँ तक रोकेंगे हम ? (खाँसते हैं।) कितने बलवाइयो को नेस्तनाबूद किया, कितने गदर रोके लेकिन लेकिन यह खाँसी नहीं रुकती बेटी ! रुके भी कैसे ? (शिथिल स्वरो में) अब आलमगीर आलमगीर नहीं है !

जीनत—नहीं, जहाँपनाह ! आज भी हिन्दुस्तान और दकन आपके इशारे पर बनता और बिगड़ता है। आपके तेवर देखकर अफगानिस्तान भी घुटने टेकता है। राजपूत, जाट, मराठे और सिख आज भी आपसे लोहा नहीं ले सकते।

आलम—लेकिन शिवाजी ले सकता था। हमारी थोड़ी सी लापरवाही से वह हाथ से निकल गया। उसकी वजह से ज़िन्दगी भर परेशान रहा। लेकिन था बहादुर और दिलेर खैर, 'काफिर

ब जहन्नम रफ्त' (खाँसते हैं ।) उसका बेटा शभाजी (रक्त जाते हैं और गहरी साँस लेते हैं ।)

जीनत—छोड़िए इन बातों को, जहाँपनाह ! ये बातें इस वक्त दिल और दिमाग दोनों को खराब करने वाली हैं । आप जैसे ही अच्छे होंगे

आलम—(बीच ही में) अब अच्छे नहीं हो सकते, जीनत ! चन्द घड़ियों की जिन्दगी ! कौन जाने कब खामोशी आ जाय ! लेकिन बेटी ! हमने एक दिन भी आराम नहीं किया । (खाँसते हैं ।) एक दिन भी नहीं । राजपूत जैसी कौम पर हुकूमत करना जिन्दगी का आराम नहीं है । सबसे बड़ी मेहनत है । मराठों की हिम्मत पस्त करना जिन्दगी का सब से बड़ा करिश्मा है—वह हमने किया, बेटी ! वह हमने किया । लेकिन अब अब हम कमजोर हो गए हैं । अब कुछ नहीं कर सकेंगे । (ठंडी साँस लेकर कलमा पढ़ते हैं ।) ला इलाह इललिल्लाह मुहम्मदुर रसूलिल्लाह

जीनत—आप सब कुछ कर सकेंगे, जहाँपनाह ! अच्छा, अब आप यह खाँसी की दवा खा लीजिये । (दवा देने के लिए उठती हैं ।) हकीम साहब दे गए हैं ।

आलम—(तीव्र स्वर में) क्या हकीम साहब खुद नहीं आए ?

जीनत—आए थे । बड़ी देर तक आपका इतज़ार करते रहे । आप होश में नहीं थे । वे थोड़ी देर के लिए बाहर चले गए हैं । उन्होंने अभी फिर आने को कहा है ।

आलम—जो दवा वह दे गए हैं, वह उन्हें चखाई गई थी ? (खाँसते हैं ।)

जीनत—जी, मैंने भी चखी थी । दवा में किसी तरह का शक नहीं है ।

आलम—यह अहमदनगर है, बेटी ! शिया रियासत बीजापुर और गोलकुडा के करीब । दुश्मनी दोस्ती में छुप कर आती है । जिन्दगी में यह हमेशा याद रखो ।

जीनत—अपका कहना सही है, जहाँपनाह ! लेकिन दवा मैंने खुद चख कर देख ली है ।

आलम—हमारे सामने नहीं चखी गई, जीनत ! लेकिन खैर, कोई बात नहीं । दवा खाएँगे लेकिन थोड़ी देर के लिए आराम, फिर वही तकलीफ । क्या करे दवा खाकर ! (जोर से खाँसी आती है ।) अच्छा लाओ, खाएँ तुम्हारी दवा । आबे हयात से बढ कर ।

[आलमगीर हाथ बढ़ाते हैं । जीनत प्याले में दवा डाल कर देती है । आलमगीर उसे हाथ में लेकर देखते हैं । सोचते हुए एक बार रुकते हैं फिर थोड़ी सी पीते हैं ।]

आलम—(गला साफ कर) पी ली तुम्हारी दवा, बेटी ! इस दवा मे जायके के साथ तुर्शी भी है । हुकूमत का प्याला भी ऐसा ही होता है ।

जीनत—लेकिन आपने सब तुर्शी जायके मे तबदील कर ली है ।

आलम—नहीं, जीनत ! मराठो ने ऐसा नहीं होने दिया । हम कुराने पाक की कसम खा के कहते हैं कि हम मराठो का नामो निशान मिटाने मे अपनी सारी सल्तनत की बाजी लगा देते, लेकिन लेकिन अब वह हौसला नहीं रह गया । कमजोरी और बुढ़ापे ने हमे बेबस कर दिया है । (ठहर कर) हमारे बहुत से काम अधूरे पड़े हैं । काश, हमारी ज़िन्दगी के दिन अभी खतम न होते ।

जीनत—(उत्साह से) अभी आप बहुत दिनो तक सलामत रहेंगे, आलमपनाह !

आलम—(बिह्वल होकर) अह, फिर एक बार कहो, जीनत ! हम यह बात फिर से सुनना चाहते हैं । ओफ् अगर हमारी ज़िन्दगी के दिन अभी खतम न होते ! हम एक बार फिर शमशीर लेकर मैदानेजग मे जाते, बागियो से कहते—कम्बख्तो ! आलमगीर

कमजोर नहीं है । उनकी तलवार में अब भी चिनगारियाँ हैं । घुटने टेक कर गुनाहो की माफी माँगो, नहीं काफ़िरो ! दोज़ख़ का रास्ता खून की नहर से है । हमारी शमशीर से कटो और दोज़ख़ में दाख़िल (आवेश में खाँसी रुकने पर भारी साँस लेते हैं ।) दोज़ख़ में दाख़िल हो ।

ज़ीनत—आप आराम करे, जहाँपनाह ! नहीं तो आपकी तबियत और भी खराब हो जायगी ।

आलम—इससे ज़ियादह और क्या खराब होगी, ज़ीनत ! जब हम मौत के दरवाज़े पर खड़े होकर दस्तक दे रहे हैं । चाहे जब खुल जाय ! और आलमगीर के लिए जल्दी ही खुलेगा । देर नहीं हो सकती । मौत भी डरती होगी कि देर हो जाने से कहीं आलमगीर सज़ा न दे । (खाँसी) ज़िन्दगी भर सज़ा ! सज़ा ! (रुकते हुए) अब्बाजान को भी आजहानी शाहेजहाँ को (सोचते हैं ।)

ज़ीनत—आलमपनाह ! तजकिरे न उठाएँ ।

आलम—(भौहो में बल देकर) क्यों न उठाएँ ? ज़िन्दगी भर गुनाहो का बोझ उठाया है तो मरते वक्त उसका तजकिरा भी न उठाएँ ? लेकिन, ज़ीनत ! हमने सैकड़ों बार अपने दिल को दिलासा देने की कोशिश की । हमने गुनाह कहाँ किए ? कुराने पाक की रूह से, शरअ से इस्लाम का नाम दुनिया में बुलन्द करने के लिए—जिहाद के लिए, जो काम हमने किए क्या उनका नाम गुनाह है ? काफ़िरो को जहन्नुम रसीद किया क्या यह गुनाह है ? उपनिषद् पढ़ने वाले दारा से सल्तनत छीनी क्या यह गुनाह है ? नमूना-ए-दरबार-ए-इलाही में क्या मुझ से गुनाह हुए ? आलम-गीर—ज़िन्दा पीर ! लेकिन कोई आवाज़ कानों में कहती है कि आलमगीर ! तूने इस्लाम का नाम लेकर दुनिया को धोका दिया है । तूने इस्लाम की हिदायतों को नहीं समझा । ज़ीनत !

तू (तू पर जोर) बतला, यह आवाज ठीक है ? क्या हमने इस्लाम के उसूलों को गलत समझा ?

जीनत—(शान्ति से) आपसे कोई गलती नहीं हुई, जहाँपनाह !

आलम—(शून्य में देखते हुए) हजारों सतनामियों को कत्ल किया दारा, शुजा, मुराद को तख्ते-ताऊस का हक नहीं दिया और बापे को सात बरस तक लम्बे सात बरस तक ।

जीनत—लेकिन आलमपनाह ! अगर गौर से देखा जाय तो शाहशाहे शाहेजहाँ को नज़रबंद करना गलत नहीं कहा जा सकता । अपनी पीरी में वे अपनी आँखों से अपने बेटों का मज़ार देखते । क्या उन्हें तकलीफ न होती ? आपने उन्हें उस तकलीफ से बचा लिया ।

आलम—लेकिन उस तकलीफ के पैदा करने का जिम्मा किसका है ? हमारा । हमने ही लाहौर में दारा की कब्र बनवाई । हमने ही आगरे में मुहम्मद को भेज कर अब्बाजान का महल कैदखाने में तब्दील कराया... । उस दास्तान को तुम जानती हो ?

जीनत—जहाँपनाह ! मुझसे वह दर्दनाक दास्तान क्यों दुहरवाना चाहते हैं ? आप आराम कीजिए । आपकी तबियत ठीक नहीं है ।

आलम—तो हम ही वह दास्तान कहेंगे जो हमने मुहम्मद से सुनी है । (शून्य में देखते हुए) आधी रात थी...कमरे में सिर्फ एक शमा जल रही थी..दूसरी शमा शाहशाहे शाहजहाँ की आँखों में झिलमिल रही थी । वह चारपाई पर तसवीरे-सग की तरह लेटे हुए थे । उनकी पथराई आँखें दूर पर दिखाई देने वाले ताजमहल पर जमी हुई थी हल्की चाँदनी थी । शाहशाह ने जहाँनारा से कहा—जहाँनारा ! आलमगीर से पूछो, वह हमारी तरह ताजमहल को तो कैद नहीं करेगा... ?

जीनत—(आग्रह के स्वरो में) जहाँपनाह ..

आलम—(उसी स्वप्न में) बादशाह की जबान तालू से सट गई थी गला सूख रहा था । गहरी और सर्द साँस लेकर उन्होंने फर-माया—मुमताज ! हमारी बेगम ! ताज हमे पत्थरो से नहीं, आँसुओ से बनवाना चाहिए था काश, यह मुमकिन हो सकता ।

जीनत—(सहानुभूति के साथ) उन्हे बहुत तकलीफ थी, आलमपनाह ! लेकिन इस वक्त यह सब सोचना बेकार है । रात ज़ियादह बीत रही है ।

आलम—(चौंक कर तसबीह फेरते हुए) क्या कहा ? रात जियादह बीत रही है ? आज हमारे लिए भी शायद वही मौत की रात है । लेकिन हमारे सामने कोई ताजमहल नहीं है । (ठहर कर) हम इस लायक हैं भी नहीं, जीनत ! जिन्दगी मे हमने कुछ नहीं किया, सिर्फ लडाइयाँ ही लडी है । उन्ही मे हमने फतह हासिल की है, लेकिन आज आज जिन्दगी मे हमे शिकस्त ही मिली भारी शिकस्त । हमने अब्बाजान को कैद नहीं किया, इस आखिर वक्त मे अपने चैनो-सुकून को ही कैद किया । आज इतने बरसो के बाद अब्बाजान की चीख हमारे कानो मे आ रही है प्यास से उनका गला सूख रहा है । उनकी आवाज मे कितना दर्द है तुम सुन रही हो ? नहीं ? उनकी हसरत भरी निगाहो को टक्कर से ताजमहल जैसे चूर-चूर होने जा रहा है ।

जीनत—(अत्यन्त सान्त्वना के स्वरो में) जहाँपनाह ! कही कुछ नहीं है ।

आप सोने की कोशिश कीजिए । जो कुछ हुआ उसे भूल ।

आलम—(बीच ही में) नहीं भूल सकते, जीनत ! हमने अपनी रूह नीव मे दपन कर सल्तनत की इमारत खडी की है । आज

रूह तडप कर करवट लेना चाहती है । वह चीख रही है ।
 तुम उसकी आवाज भी नहीं सुनना चाहती ?

जीनत—जहाँपनाह ! खुदा को याद कीजिए । सोने की कोशिश कीजिए ।
 रात आधी से ज्यादा बीत चुकी है ।

आलम—जिन्दगी उससे ज्यादा बीत चुकी है । (नेपथ्य की ओर उँगली
 उठा कर) देखती हो यह अँधेरा ? कितना डरावना ! कितना
 खौफनाक ! दुनिया को अपने स्याह परदे में लपेटे हुए है ।
 गोया यह हमारी जिन्दगी हो ! इसमें कभी सुबह नहीं होगी,
 जीनत ? अगर होगी भी तो वह इसके काले समुन्दर में डूब
 जायगी । इस अँधेरे में सूरज भी निकले तो वह स्याह हो जायगा ! . .
 (रुक कर) ओह कितना अँधेरा है, खुदा ! हमने तेरा नाम लेकर
 सलतनत पर कब्जा किया, तेरा नाम लेकर औस्तो और बच्चो
 को कैद किया, वे सब तेरे बच्चे ! तेरे बन्दो पर एतबार नहीं
 किया । तेरा नाम लेकर कुरान की कसम खाकर मुराद .
 भाई मुराद से सुलह की और फिर और फिर उसका खून .
 [खाँसी आती है और फिर निःश्वस हो जाते हैं ।]

जीनत—(घबराहट के स्वरो में) जहाँपनाह ! जहाँपनाह ! (फिर
 पुकार कर) करीम ! करीम !

(करीम सिपाही का प्रवेश । वह अदब से सलाम करता है ।)

जीनत—(आदेश के स्वरो में) हकीम साहब को फौरन यहाँ आने की
 इत्तला करो । बादशाह सलामत की तबियत खराब होती जा
 रही है । फौरन जाओ । हकीम साहब अमीरो के दूसरे कमरे
 में होंगे । फौरन

करीम—जो हुक्म । (अदब के साथ सलाम कर प्रस्थान)

[जीनत के मुख पर घबराहट के चिह्न और स्पष्ट हो जाते हैं ।
 वह एक पंखे से हवा करती है । आलमगीर होश में आते

हैं। धीरे धीरे अपनी आँखें खोल कर जीनत को घूर कर देखते हैं।)

आलम—(कांपते हुए स्वरो में) कौन ? अब्बाजान ! (आँखें फाड़ कर) तुम ? तुम जीनत हो ? अब्बाजान कहाँ गए ? अभी तो यहाँ आए थे। (सोचते हुए) जर्द था उनका चेहरा आँखों में आँसू थे। (ठडी साँस ले कर) इतने बड़े शाहशाह की आँखों में आँसू ? उन्होंने हमारे सामने घुटने टेक दिए और कहा—शहशाहे आलमगीर ! हमें हमारा बेटा और गज़ेब वापस कर दो ! बादशाही लिबास में हमारा बेटा खो गया है । उसे हमें वापस कर दो ! (कुछ ठहर कर) लेकिन जीनत ! वह बेटा कहाँ है ? उसने तो अपने अब्बाजान को कैद किया है। (इसी समय कमरे में टेंगा हुआ पक्षी अपने पंख फड़फड़ा उठता है। आलमगीर उसकी तरफ चौंक कर देखते हैं।)...और यह परिन्दा अपने पर फैला कर हमसे कुछ कह रहा है ? क्या कहेगा ? इसे भी तो हमने सोने के पिंजड़े में कैद किया है। (जीनत की ओर आग्रह से) जीनत ! इस पिंजड़े का दरवाजा खोल दो। (जीनत पिंजड़े का दरवाजा खोलती है।) उसे निकालो। (जीनत परिन्दा पकड़ कर निकालती है।) उडा दो उसे। (जीनत उसे खिड़की से बाहर उड़ा देती है। आलमगीर उसके उड़ने की दिशा में कुछ देर देख कर सन्तोष की गहरी साँस लेते हैं।) आ जा द ! (कुछ रुक कर) हम अब्बाजान को इस तरह आज्ञाद नहीं कर सके। हिन्दुस्तान के बादशाह को इस परिन्दे की किस्मत भी नसीब नहीं हुई !

जीनत—लेकिन आलमपनाह ! बादशाह तो न जाने कब के दुनियाँ की कैद से निकल कर आज्ञाद हो गए। अब किस बात का मलाल है ? आप अपनी तबियत सँभालिए। मैंने हकीम साहब को बुलवाया है। वे आते ही होंगे।

आलम—(जीनत की बात जैसे उन्होंने सुनी ही नहीं ।) परिन्दे की किस्मत बादशाह की किस्मत नहीं हो सकी । इस अँधेरे में उस परिन्दे की किस्मत जागी है । वह खुश होकर शोर कर रहा है । बचपन में दारा भी इसी तरह शोर करता था । (रुक कर) कुछ वैसी ही आवाज़ आ रही है । (सुनते हुए) वह देखो ! यह आ रही है । (रुक कर) लेकिन यह आवाज़ कैसी है ? इस खौफनाक अँधेरे में यह आवाज़ जैसे मुँह फाड़ कर खाने को दौड़ रही है । यह आई ! जीनत ! यह आवाज़ सुनती हो ?

जीनत—(आश्चर्य से) कैसी आवाज़ ? कौन सी आवाज़ ? जहाँपनाह !

आलम—(आँखें फाड़ कर) अरे, इतने जोर से आवाज़ आ रही है और तुम्हें सुनाई नहीं पड़ती ? यह देखो । (सुनते हुए) फिर आई । यह हर लम्हें तेज होती जा रही है । जीनत ! (पुकार कर) जीनत ! यह आवाज़ । (चीख कर) यह खौफनाक आवाज़ ।

जीनत—(धैर्य के स्वरो में) कोई आवाज़ नहीं है, जहाँपनाह ! आपकी तबियत में घबराहट है । इसी वजह से ऐसा खयाल पैदा हो रहा है । (विश्वासपूर्वक) कहीं कोई आवाज़ नहीं है । आप अपने को सँभालने की कोशिश करें ।

आलम—(घबराहट से कुछ उठ कर) नहीं, नहीं, यह आवाज़ बराबर आ रही है । कोई चीख रहा है ! (सकेत कर) यह देखो । अँधेरे में यह कौन भाँक रहा है ? कौन ? (जोर से) कौन ? (पुकार कर) सिपहसालार ?

जीनत—(समीप हो कर) कोई नहीं है, जहाँपनाह ! सिपहसालार की ज़रूरत नहीं है ।

आलम—(घबराहट से भर्पाए हुए स्वर में) यह खिडकी के पास कौन है ? (संकेत करते हुए) कराहता हुआ, चीखता हुआ ! ओह ! उसने फिर चीख भरी, अरे दारा ! (काँपते हुए) दारा ! तुम हो ?

हमने तुम्हारा खून नहीं किया ! हमने नहीं किया, दारा ! हुसेनखाँ
जबरदस्ती तुम्हारे कमरे में घुस गया ! हमने उसे हुक्म नहीं दिया
था। और और (काँप कर) तुम्हारा सर कहाँ है, दारा !
तुम्हारा सर किधर गया ? (आलमगीर उठ खड़े होते हैं।
फिर लडखडाते हुए) हम खोज कर लाएँगे। हम अभी खोज
कर लाएँगे। (हाथ फैलाते हुए) तुम्हारा इतना खूबसूरत
सर...।

[जीनत उन्हें रोक कर फिर पलंग पर लिटा देती है। आलमगीर
अचेत हो जाते हैं।]

जीनत—(अपने आँखल से अपने माथे का पसीना पोछती हुई) जहाँ
पनाह .।

(करीम का प्रवेश)

करीम—(अदब से सलाम करके) शाहजादी ! हकीम साहब तशरीफ
लाए हैं।

जीनत—(शीघ्रता से) फौरन उन्हें अन्दर भेजो, इसी वक्त।

करीम—(सलाम कर) जो हुक्म। (शीघ्रता से प्रस्थान)

जीनत—(कम्पित स्वर में, आँखों में आँसू भर कर) क्या जानती थी
कि अहमदनगर में यह सब होगा ! या खुदा ! (आलमगीर को
चादर उठाती है।)

[हकीम साहब का प्रवेश ! लम्बी डाढ़ी, काला चोगा, सर पर
अमामा, सफेद पैजामा और जूते। साथ में दवाओं का एक
सन्दूकचा]

हकीम—(बादशाह को अदब से सलाम करने के बाद जीनत को सलाम
करते हैं।) आदाब !

जीनत—(कम्पित स्वर में) आलमपनाह को होश नहीं है, हकीम साहब !
(उठ कर हकीम साहब के पास आती है।) आज रात को आलम-

पूनाह की तबियत बहुत ही खराब रही । जानें उन्हें क्या हो गया है । जागते हुए ख्वाब देखते हैं और चीख उठते हैं । एक लमहा उन्हें चैन नहीं है । (करुण स्वर में) अब आप ही मेरे नाखुदा हैं । तबियत घबराती है । जहाँपनाह को अच्छा कर दीजिए, जल्द अच्छा कर दीजिए ।

हकीम—जहाँपनाह को होश नहीं है । (गम्भीर और सान्त्वना के स्वरों में) घबराइए नहीं, घबराइए नहीं, शाहजादी । खुदा पर भरोसा रखिए । वह चाहेगा तो इशाअल्लाह, बादशाह सलामत बहुत जल्द अच्छे हो जाएँगे । देखिए, मैं दवा देता हूँ । बादशाह सलामत अभी होश में आए जाते हैं । घबराने की कोई बात नहीं ।

जीनत—(विकृत स्वर में) मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि मैं क्या करूँ ।

हकीम—इतमीनान के साथ आप बादशाह सलामत को पखा भलें । मैं उन्हें होश में आने की दवा देता हूँ ।

[हकीम अपने सन्दूकचे में से एक टिकिया निकालते हैं । जीनत पखा भलती है ।]

हकीम—(डिबिया का ढक्कन खोलते हुए) अब बादशाह सलामत की खाँसी कैसी है ?

जीनत—खाँसी में बहुत आराम है । पहले तो वे हर बात कहने में खाँसते थे । आपकी दवा से उनकी खाँसी बहुत कुछ रुक गई, लेकिन घबराहट बहुत ज़ियादह बढ़ गई है । (पखा भलती है ।)

हकीम—घबराहट भी दूर हो जायगी । (आलमगीर की नाक के समीप बहुत आहिस्ते से डिबिया ले जाते हैं ।) अभी जहाँपनाह को होश आता है । आप सब्र करें ।

जीनत—उनकी बेचैनी देख कर तो मैं बिल्कुल ही घबरा गई थी । मैंने

बड़ी मुश्किल से अपने को काबू में रक्खा । अगर मैं भी घबरा जाती तो फिर इधर था ही कौन ?

हकीम—जहाँपनाह की खिदमत करना मेरा पहला फर्ज है ।

जीनत—इसीलिए तो मैंने आपके पास फौरन् खबर भेजी ।

हकीम—मैं खबर पाते ही हाज़िर हुआ । (आलमगीर पर गहरी नज़र डाल कर) देखिए, देखिए ! बादशाह सलामत को होश आ रहा है । पखा ज़रा धीमा करे ।

(आलमगीर के ओठों में कुछ स्पन्दन होता है, जैसे वे कुछ कहना चाहते हैं । फिर हल्की अँगड़ाई लेकर आँखें खोलते हैं । जीनत और हकीम के मुख पर प्रसन्नता की झलक)

जीनत—(उत्साह से) होश आ गया ! होश आ गया ! !

हकीम—बादशाह सलामत को आदाब अर्ज करता हूँ । (बरबारी ढंग से सलाम करता है ।)

आलम—(धीमे स्वर में) पा. नी ।

[जीनत शीघ्रता से सुराही में से गुलाब जल निकाल कर आगे बढ़ाती है ।]

जीनत—जहाँपनाह, यह पानी

[आलमगीर उठने की कोशिश करते हैं । हकीम उन्हें उठने में सहारा देता है । आलमगीर पानी पीने के लिए भुक्त हैं । लेकिन दूसरे ही क्षण रुक जाते हैं]

आलम—(प्रश्नसूचक स्वर) यह कौन सा पानी है ?

जीनत—(नम्रता से) वही गुलाब जल है जो आपके लिए खास तौर से तैयार किया गया है ।

आलम—(सन्तोष से) लाओ । (एक घूंट पीकर ...घबरा कर) हमारी तसबीह कहाँ है ?

जीनत—(पलंग से तसबीह उठा कर) यह है, जहाँपनाह !

आलम—(लेते हुए) हमेशा मेरी ज़िन्दगी के साथ रहने वाली !
(फिर एक घूंट पानी पीकर हकीम साहब को धूरते हुए) तुम
कौन हो ? (एक क्षण बाद जैसे स्मरण करते हुए) शायद
हकीम साहब ?

हकीम—(सलाम करते हुए) जी, जहाँपनाह !

आलम—(कातर स्वर में) हमारी हालत बहुत खराब है, हकीम साहब !
अब शायद हम न बचेगे । (ठंडी साँस लेते हैं ।)

हकीम—ऐसी बात न फरमाएँ, जहाँपनाह ! बुखार आपका अब दूर हो
ही गया, सिर्फ कमजोरी और खाँसी है । खाँसी भी अब अच्छी
हो चली है, और कमजोरी भी, इशाअल्लाह, दूर हो जायगी ।

आलम—तो ज़िन्दगी भी दूर हो जायगी, हकीम साहब ! इस वक्त
हमारे लिए कमजोरी और ज़िन्दगी दो अलग-अलग चीज़े नहीं
हैं । एक दूर होगी तो दूसरी भी दूर हो जायगी । और आलमगीर
कमज़ोर होकर जिन्दा नहीं रहेगे ।

हकीम—(अदब से) आलमपनाह ! आप बजा फरमाते हैं । (हकीम
यह बात आदत से कह देते हैं लेकिन अपनी गलती महसूस करने
पर घबरा कर) लेकिन इसे सही नहीं मानना चाहिए, आलम-
पनाह ! (यह सोच कर कि उन्हें यह भी नहीं कहना चाहिए वे
और घबरा कर कहते हैं ।) मैं क्या अर्ज करूँ कुछ जवाब
नहीं दे सकता ।) हाथ मलते हुए सर झुका लेते हैं ।)

आलम—(गम्भीरता से) जीनत, हकीम साहब से कहो कि वे हमें बेहोशी
की दवा दे ।

जीनत—(बात बदलने के विचार से) इन्ही की दवा से तो आप होश
में आए हैं, जहाँपनाह !

आलम—(गम्भीर किन्तु रुकते हुए स्वरों में) लेकिन, जीनत ! इस होश
से हमारी बेहोशी अच्छी है । गुनाहो की याद अब बरदाश्त

(रुककर, चौंककर, अपनी बात पलटते हुए) हकीम साहब, कमजोरी की हालत अब बरदाश्त नहीं होती। ऐसी दवा दीजिए कि बेहोशी का आलम रहे। (रुक कर) आपके पास—शराब को छोड़ कर—कोई ऐसी दवा है ?

हकीम—जहाँपनाह ! आपकी कमजोरी बहुत जल्द रफा हो जायगी।

आलम—(तीव्रता से) हमारे सवाल का जवाब दीजिए, हकीम साहब ! आपके पास शराब को छोड़ कर कोई ऐसी दवा है ?

हकीम—(घबरा कर हकलाते हुए) जी, ऐसी दवाएँ तो बहुत हैं आलमपनाह ! लेकिन आपको—अपने जहाँपनाह को कैसे दे सकता हूँ ? ये दवाएँ आपके लिए नहीं हैं, आलमपनाह !

आलम—(आँखें फाड़ कर) आलमपनाह के लिए नहीं है ? कौन-सी दौलत है जो आलमगीर के लिए नहीं है ? इस वक्त बेहोश हो जाने की दवा हमारे लिए सब से बड़ी दौलत है। हकीम साहब ! हम इस वक्त वही चाहते हैं।

जीनत—(भुकुटि-संचालन के साथ) हकीम साहब ! आपके पास एक ऐसी दवा भी तो है जिसमें थोड़ी देर की बेहोशी के बाद सारी कमजोरी दूर होकर तबियत में ताज़गी आती है ? (घूर कर देखती हैं।)

हकीम—(सँभल कर) हाँ, हाँ, एक ऐसी दवा मेरे पास है। मेरे वालिद साहब ने मुझे वह नुसखा देकर कहा था कि जब सब दवाएँ बेकार साबित हो तब उसका इस्तेमाल किया जाय। (हिचकते हुए) मैं अभी उसका इस्तेमाल नहीं करना चाहता था।

जीनत—(आलमगीर से) और जहाँपनाह, इस वक्त वह दवा न खाई जाय तो बेहतर होगा। सुबह होने में ज़ियादह देर नहीं है, और अजान का वक्त करीब आ रहा है। आप खुदा की इबादत न कर सकेंगे। अभी वह दवा रहने दे।

आलम—यह बात ठीक कह रही हो, बेटा ! अच्छा, अभी वह दवा रहने दीजिए, हकीम साहब ! आप अजान होने के वक्त तक दूसरी दवा दे सकते हैं ।

हकीम—बसरोचरम । (शाहजादी से) शाहजादी, आप मुझे एक प्याला इनायत फरमावे, मैं कमजोरी दूर करने की दवा अभी पेश करूँ ।

जीनत—(प्याला उठा कर) यह लीजिए ।

हकीम—(अपने सन्दूकचे में से एक दवा निकालते हुए) खुदा चाहेगा तो आपको फौरन आराम होगा । सितारो की नहूसत दफा होगी । (प्याले में दवा डालते हुए) आलमपनाह ! हमीदुद्दीनखाँ ने तो सितारो की नहूसत दूर करने के लिए ४,००० रु० का एक हाथी आलमपनाह पर तसद्दुक कर दिया होगा ?

आलम—(गम्भीर स्वर में) नहीं । जुमेरात को हमीदुद्दीनखाँ ने नुजूमियो के कहने के मुताबिक तसद्दुक करने के बारे में एक दरखास्त ज़रूर पेश की थी, लेकिन हमने उस दरखास्त में यह बढ़ा दिया कि यह तो अजुमपरिस्तो का रिवाज है । इसके बजाय ४,००० रुपया काजी को गुरबा में तकसीम करने के लिए दे दिया जाय ।

हकीम—(उत्साह से आँखें चमका कर) आलमपनाह ने क्या बात कही है ! अब तो सितारो की नहूसत दूर होने में कोई अन्देशा भी नहीं रह गया और मुझे भी यह कामिल यकीन है कि यह अरक आपको ऐसी ताकत देगा कि आप तन्दुरुस्त होकर अपनी रिआया के दर्दोगम को दूर करते हुए सौ साल तक सलामत रहेंगे ।

आलम—(सोचते हुए) सौ साल तक ! यानी ग्यारह बरस और । लेकिन हकीम साहब, हम ग्यारह दिन भी जिन्दा नहीं रहेंगे । बेटो को भी तो बादशाहत करने का मौका मिले । हमारे बेटे (सोचते हुए) मुअज़्ज़म . आजम कामबरूश

हकीम—(दवा का प्याला सामने करते हुए) यह सही है, आलमपनाह !

लेकिन मुझे भी अपनी खिदमत करने का मौका दे । मैंने अपनी हिक्मत की बेहतरीन दवा आलमपनाह के रूबरू पेश की है ।

आलम—(जीनत से) अच्छा जीनत, यह दवा रख लो । इसे हम नमाज़ के बाद पिएँगे । अब आप तशरीफ ले जा सकते हैं । (जीनत दवा का प्याला ले लेती है ।)

हकीम—(सिर झुका कर) जो जहाँपनाह का हुक्म । लेकिन एक गुज़ारिश है ।

आलम—क्या ?

हकीम—(हाथ जोड़ कर) आलमपनाह कुछ न सोचे, कोई गुप्तगू न करे । इस वक्त आराम करना खुद एक मुफीद दवा होगी । सुबह होते ही आलमपनाह की तबियत अच्छी मालूम होगी ।

आलम—अच्छी बात है, हम कुछ न सोचेंगे । कुछ गुप्तगू न करेंगे । लेकिन हम अपने बेटों को खत तो लिखवा सकते हैं ?
(सोच कर) वही करेंगे । हकीम साहब ! अब आप तशरीफ ले जाइए । हमे अपने बेटों की याद आ रही है ।

हकीम—जो हुक्म ।

(बादशाही अदब के अनुसार सलाम करके प्रस्थान)

आलम—(सोचते हुए) हकीम साहब कहते हैं कि हम कुछ न सोचे कोई गुप्तगू न करे, सुबह होते ही तबियत अच्छी मालूम होगी । लेकिन जीनत ! हम जानते हैं कि हमारी तबियत अच्छी नहीं होगी । हमने अपनी किस्ती समन्दर में छोड़ दी है । अब साहिल दूर होता जा रहा है ।

जीनत—तबियत में घबराहट होने की वजह से आलमपनाह ऐसा फरमा रहे हैं । अब आपकी तबियत अच्छी होने जा रही है । हकीम साहब की दवा बहुत मुफीद साबित हुई है । देखिए, आपकी खाँसी को कितना फायदा पहुँचा है !

आलम—(ज़ोर देकर) तुम नहीं समझी, जीनत ! जिस तरह सुबह होने से पहले रात और भी सुनसान और खामोश हो जाती है, उसी तरह मौत से पहले हमारी सारी शिकायतों का शोर खामोश हो गया है । अब हमारा आखिरी वक्त करीब है ।

जीनत—(आँखों में आँसू भर कर) ऐसा न कहे, आलमपनाह !

आलम—(गहरी साँस ले कर) और जीनत ! हमारी बेटी ! आज इस आखिरी वक्त में हमारे बिस्तर के नजदीक हमारा एक भी बेटा नहीं है । ऐसे बाप को तुम क्या कहोगी जिसने बादशाहत में खलल पड़ने के वहम से अपने कलेजे के टुकड़ों को सजा देकर हमेशा कैदखाने में रक्खा ? अपने नजदीक आने भी नहीं दिया ।

(सोचते हुए) हमारे कैदी बच्चों ! तुम बदकिस्मत हो कि आलमगीर तुम्हारा बाप है । तुमने और कोई गुनाह नहीं किया । तुम लोगों का सिर्फ यही गुनाह है कि तुम औरंगजेब के बेटे हो । आज तुम्हारा बाप मौत के दरवाज़े पर पहुँच कर तुम्हारी याद कर रहा है । मुअज़्ज़म आज्ञा कामबख्श ।

जीनत—(आग्रह से) जहाँपनाह, मैं उन लोगों तक आपके ये मुहब्बत भरे अल्फाज़ जरूर पहुँचा दूंगी ।

आलम—(सन्तोष से) हम अपनी कन्न से भी तुम्हें दुआ देंगे, बेटी ! हम खुद अपने बच्चों को खत लिखाना चाहते हैं । इस आखिरी वक्त में हमारी स्वाहिश पूरी होने दो । कातिब को बुलाओ । (ठडी साँस लेते हैं ।)

जीनत—आपका हुक्म पूरा होगा । अब्बाजान ! (पुकार कर) करीम ! [करीम का प्रवेश । वह सलाम करता है ।]

जीनत—शाही कातिब को इसी वक्त हाज़िर किया जाय ।

करीम—जो हुक्म । (सलाम कर शीघ्रता से प्रस्थान)

आलम—(मन्द स्वर में) हम खुश हुए, बेटी ! हमारी दुआएँ तुम्हारे साथ

रहे । आज तक हमने शायद किसी की ख्वाहिश पूरी नहीं की, हमें कोई हक नहीं कि किसी से भी अपनी ख्वाहिश पूरी करने के लिए कहे । लेकिन तुमने हमारी ख्वाहिश पूरी की । बहुत दिनों तक जियो ।

जीनत—जहाँपनाह ! शाहजादी जहाँनारा ने अब्बाजान की कैद में सात साल तक खिदमत की तो क्या मैं आपकी खिदमत कुछ दिनों तक भी न करूँ ?

आलम—हमें भी कैद में समझो, बेटी ! हमारे गुनाहों ने हमें चारों तरफ से घेर रक्खा है । जमीर की ज़ज़ीरो ने भी हमारे हाथ-पैर बाँध लिये हैं । हम अब इस दुनियाँ को आँख उठा कर भी नहीं देख सकते । जिस सल्तनत को खून से सींच-सींच कर हमने इतना बड़ा किया है उसे अगर अब आँसुओं से भी सींचना चाहे तो हमें एक पूरी जिन्दगी चाहिये । वह हमारे पास कहाँ है ? (गला सूख जाता है । ठहर कर) बेटी ! पानी पानी गला सूख रहा है ।
[जीनत प्याले में गुलाब जल ले कर पिलाती है ।]

जीनत—आप थक गए हैं, जहाँपनाह ! सारी रात आपको बहुत बेचैनी रही ।

आलम—उस बेचैनी के ख़त्म होने का वक़्त भी आ रहा है । (खिड़की की ओर सकेत करते हुए) देखो, ये तारे ढल रहे हैं । रात भर इन्होंने रौशनी की ओर अब वे अपनी आखिरी घड़ियाँ गिन रहे हैं । हम भी गिन रहे हैं, लेकिन हमने उम्र भर अँधेरा ही फैलाया । उजाले की कोई किरन नहीं रही । हम मौत को ही उजाला दे सके तो अपने को खुश किस्मत समझेंगे । (स्तब्धता । एक बारगी चौंक कर) सुबह हो गई क्या ? (खिड़की की ओर देखते हैं ।)

जीनत—(उसी ओर देखती हुई) हाँ, जहाँपनाह ! आसमान पर सफेदी छाने लगी है ।

आलम—(गहरी साँस ले कर) खुदा की इबादत का वक्त आ रहा है ।
(तसबीह फेरते हैं ।) जीनत, हमने जिन्दगी भर इबादत का
ढिठोरा पीटा, लेकिन खुदा के पास तक नहीं पहुँच सके । अगर
पहुँच पाते तो चलते वक्त इतने गुनाहों का बोझ हमारे सर पर
न होता । चलने का वक्त करीब आ रहा है । मुझे खुशी है कि
आज जुमा है । हमने जिन्दगी भर इबादत कर यही चाहा कि
जुमा हमारा आखिरी दिन हो । (अस्थिर हो कर) कातिब
अभी नहीं आया ?

जीनत—आ रहा होगा, जहाँपनाह ! करीमबख्श फौरन ही उसे लेकर
हाज़िर होगा ।

आलम—(ठंडी साँस ले कर) जीनत, जब हम पैदा हुए थे तब हमारे
चारों तरफ हज़ारों लोग थे, लेकिन लेकिन इस वक्त हम
अकेले जा रहे हैं । हम इस दुनियाँ में आए ही क्यों ? हमसे किसी
की भलाई नहीं हो सकी । हम वतन और रैयत दोनों के गुनाह
अपने सर पर लिए जा रहे हैं ।

जीनत—आलमपनाह ! आपने तो वतन और रैयत की भलाई की है,
और

आलम—(बीच ही में रोक कर) इस आखिरी वक्त में ऐसी बात मत
कहो, जीनत ! ये बातें बहुत बार सुनी हैं । लेकिन अब इन बातों
से रूह काँपती है, दिल डूबता है । काश ! ये बातें सच होती !
(गहरी साँस लेते हैं ।)

जीनत—नहीं, आलमपनाह ! खानदाने तैमूरी में आपसे बढ कर अद्ल
करने वाला कोई नहीं हुआ ।

आलम—और उस अद्ल में हमने अपनी मुराद पूरी की । मुराद
(मुराद शब्द से मुरादबख्श का स्मरण आने पर) और हमारे
मुरादबख्श ने सामूगढ की लड़ाई में हमारे कहने पर दारा से लोहा

लिया । कितनी हैरतअग्नेज जग थी वह ! (सोचते हुए)
 राजा रामसिंह ने तलवार का ऐसा हाथ चलाया कि हम मय
 हाथी के जमीदोज हो जाते, लेकिन मुरादबख्श मुरादबख्श ने
 अपनी ढाल पर तलवार रोक, राजा रामसिंह पर ऐसा वार किया
 कि वह हाथी के पैरो पर आ गिरा । उसका केशरिया बाना
 खून से लथपथ होकर जमीन पर फैल गया, और बस इस सबका
 बदला मुरादबख्श को क्या मिला ! ओह पा नी .

(जीनत फिर पानी पिलाती है ।)

जीनत—हुजुरेआली ! आपसे दस्तबस्ता अर्ज है कि आप अब कुछ न फर-
 माएँ । ऐसी बातें करके आप अपनी हालत और खराब कर लेते हैं ।

आलम—(उतावली से) इस वक्त हमें मत रोको, जीनत उन्निसा !
 हमें मत रोको । हम कहेंगे, जरूर कहेंगे । बुझने से पहले शमा
 की लौ भडक उठती है । हमारी याददाश्त भी ताज़ी हो रही
 है । एक-एक तसवीर आँखों के सामने आ रही है । हम हाथी
 पर बैठ कर सैरगाह जा रहे हैं । आगे पीछे हिन्दुओं का बेशुमार
 मजमा है । वे चीख-चीख कर कह रहे हैं कि आलमपनाह !
 जज़िया माफ कर दीजिए । लेकिन हम माफ कैसे कर सकते
 हैं ? दकन की लडाइयों का खर्च कहाँ से आएगा ? हम कहते
 हैं . तुम काफिर हो ! जज़िया नहीं हटेगा । वे लोग हमारे
 रास्ते पर लेट जाते हैं । हमारा हाथी आगे नहीं बढ़ रहा है ।
 हम गुस्से में आकर फीलवान को हुक्म देते हैं, इन कम्बख्तों पर
 हाथी चला दो । हाथी आगे बढ़ता है और सैकड़ों चीखें हमारे
 कान में पड़ती हैं ! . . . हम हँस कर कहते हैं—काफिरो, तुम्हारी
 यही सज़ा है । जज़िया माफ नहीं हो सकता . . . नहीं हो
 सकता . . . !

जीनत—(आँखों में आँसू भर कर) आलमपनाह !

आलम—(उसी स्वर में) आज वह हाथी हमारे सामने भूम रहा है ।
मौलूम होता है, वह हमारे कलेजे को चूर-चूर करता हुआ जा रहा है । जीनत, हमारा कलेजा टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा है ।
इसकी दवा तुम्हारे हकीम साहब के पास नहीं है ?

जीनत—(कातर स्वर में) आलमपनाह ! आप यह दवा पी लीजिये । इस दवा से आपको बहुत फायदा होगा ।

[दवा का प्याला आगे बढ़ाती है ।]

आलम—(भारी साँस लेकर) जिसने सारी ज़िन्दगी खून का जाम पिया है, उसे दवा का जाम क्या फायदा करेगा ? इसे फेंक दो, जीनत ।
उस खिड़की की राह फेंक दो ।

जीनत—आलमपनाह ! यह दवा . . (हिचकती है ।)

आलम—(तीव्र स्वर में) जीनत ! हम अब भी हिन्दुस्तान के बादशाह हैं । हमारे हुकम की शमशीर अब भी तेज है । फेंको, वह दवा ।
(जीनत खिड़की की राह से वह दवा फेंक देती है ।)

आलम—(सन्तोष से) हम खुश हुए । (ठहर कर) सोचो, जो दवा हकीम ने नहीं चखी, वह दवा हमारे काम की नहीं है । अहमद नगर का हकीम आगरे और दिल्ली का हकीम नहीं है ।

जीनत—तो जहाँपनाह ! वह दवा मैं चख लेती ।

आलम—जीनत, ज़िन्दगी भर हमने अपने ही मकान में आग लगाई है । मरते वक्त अपनी बेटी को भी मौत का जाम चखने देते . ? क्या हम हकीम को दवा चखने का हुकम नहीं दे सकते थे ? लेकिन अब दवा पर हमारा भरोसा नहीं है, जीनत ! दुआ पढ़ भरोसा है । हमारे लिए दुआ करो . . . हमारे लिए दुआ करो ।

जीनत—(हाथ बाँध कर ऊपर देखती हुई) जहाँपनाह सलामत रहे !
जहाँपनाह सलामत रहे ! आ मी न (आँखें बन्द कर लेती है ।)

[करीम का प्रवेश]

करीम—(सलाम करके) शाहजादी, कातिब हाजिर है ।

आलम—(चौंक कर खुशी के स्वर में) क्या कातिब आ गया ? आ गया ? इसी वक्त उसे हमारे रूबरू हाजिर करो । हमारे पास जियादह वक्त नहीं है ।

करीम—(सलाम कर) जो हुक्म । (शीघ्रता से प्रस्थान)

आलम—(सन्तोष की साँस ले कर) कातिब आ गया, बेटी । काश यह हमारी सारी जिन्दगी की दास्तान बड़े हरफो में दर्ज करता । हमारे बेटो के लिए यह बहुत बड़ी नसीहत होती । आलमगीर के आखिरी वक्त में सच्ची जिन्दगी पैदा होती । (तसबीह फेर कर कलमा पढ़ते हैं) ला इलाह इल लिल्लाह मुहम्मदुर रसूलिल्लाह ।

जीनत—(आँख में आँसू भर) अब्बाजान ! (उसका गला रूँध जाता है ।)

आलम—रोओ मत, बेटी । हम खुश हैं कि तुम हमारे पास हो । आखिरी वक्त में अपनी बेटी की आवाज से हमारी कब्र में फूल बिछ जायेंगे, उसके आँसुओं के कतरों से हमारे गुनाह धुल जायेंगे । हमारी बेटी जीनत ! (उसका हाथ अपने हाथ में लेते हैं ।)

(कातिब का प्रवेश । ढीला-ढाला इबा (चोपा), कमर में कमरबन्द । सिर पर साफा, सफेद पैजामा, कामदार जूता । वह आकर शाही सलाम करता है ।)

आलम—(शीघ्रता से) कातिब ! तुम आ गए । हम अपने बेटों को खत लिखाना चाहते हैं । जल्द लिखो । हमारे पास वक्त बहुत थोड़ा है । लिखना शुरू करो । (आलमगीर आँखें बन्द कर लेते हैं ।)

कातिब—(सिर झुका कर) जो, इरशाद ।

(कातिब बैठ कर लिखने की मुद्रा धारण करता है । कुछ देर तक स्तब्धता रहती है । फिर आलमगीर मन्द किन्तु व्यथित स्वरों में बोलते

हैं । कातिब लिखता जा रहा है ।)

आलम—(धीरे-धीरे) सलाम अलेकुम आजम, हमारे बेटे, हम जा रहे हैं . । हम ज़िन्दगी में अपने साथ कुछ नहीं लाए, लेकिन अपने साथ गुनाहों का कारवाँ लिए जा रहे हैं । तुम उखूबत, अमन व ऐतमाद पर खयाल रखना । यह माले दुनियाँ हेच है । हमारी आँखों ने खुदा का नूर नहीं देखा जिस्म से गरमी निकल गई है अब कोयलो का ढेर बाकी है । हाथ पैर सूखे दरख्त की शाखों की तरह सख्त हो रहे हैं और कलेजे पर मायूसी की चट्टान रक्खी हुई है खुदा से दूर हूँ और दिल में कोई सुकून नहीं है हमारे लिए कौनसी सजा होगी यह सोचा भी नहीं जा सकता . . खुदा की रहमत पर हमारा पूरा यकीन है, लेकिन हम अपने गुनाहों का बोझ कहाँ ले जाये ? अब हमने समन्दर में अपनी किस्ती डाल दी है . खुदा हाफिज़ ।

जीनत—(आँखों में आँसू भरे हुए) अब्बाजान ।

आलम—(आँख बन्द किए हुए) कामबरूश, हमारे बेटे

जीनत—(कातिब की ओर इशारा करके) लिखो । (कातिब लिखता है ।)

आलम—हम अकेले जा रहे हैं . तुम बेसहारे हो, इसका हमें मलाल है . . . ! लेकिन इससे क्या फायदा . . ? जो सज़ाएँ हमने दी है . . जो गुनाह हमने किए हैं . . जो बेइसाफियाँ हमने की हैं . इन सबका अज़ाब हम अपने आगोश में लिए हैं . . हम तुम्हें खुदा पर छोड़ते हैं । अपनी माँ उदयपुरी को तकलीफ मत देना . . ! मैं रुखसत होता हूँ . . . अलविदा . . ! (थोड़ी देर तक स्तब्धता रहती है ।)

जीनत—(करुण स्वर में) अब्बाजान । आप ऐसा खत क्यों लिखा रहे हैं ?

आलम—(जीनत की बात पर कुछ ध्यान न देकर) जीनत ! मेरी बेटी !
 इस जिन्दगी के चिराग में अब तेल बाकी नहीं रहा । इस
 खाक के पुतले को कफन और ताबूत की जेबाइश की ज़रूरत
 नहीं । इस बदनसीब को जमीन में यो ही दफ्न कर देना
 इस मुश्ते-खाक को पहली ही मजिल पर सिपुर्द-खाक कर दिया
 जाय . हमें खुशी होगी अगर हमारी कब्र पर कुदरती सब्ज
 मखमल की चादर बिछी होगी . . (कुछ देर ठहर कर) आँ ज-
 हानी हमारे गुनाहों को बरुश दीजिए । दारा ।
 शुजा । मुराद ।

[इसी समय बाहर 'अल्लाहो अकबर' की ध्वनि में अज्ञान होती है ।
 आलमगीर ध्यान से सुनते हैं । उनके ओठों में कुछ स्पन्दन होता है,
 फिर एक झटके के साथ सिर उठा कर अज्ञान आने की दिशा में नेपथ्य
 की ओर देखते हैं ।]

आलम—(तसबीह फेरते हुए नेपथ्य की ओर देख कर रुकते किन्तु
 स्पष्ट स्वरों में)

अल्ला हो . अक

['अकबर' का अन्तिम अक्षर 'बर' ओठों ही में रह जाता है और
 तकिए पर आलमगीर का सिर झटके से गिर पड़ता है ।]

जीनत—(शीघ्रता से आलमगीर के सिर के समीप जाकर हँसे हुए
 कंठ से) आलमपनाह ! अब्बा जान ।

[कोई जवाब नहीं मिलता । बाहर अज्ञान होती रहती है । जीनत
 अपने आँचल से आँसू पोछती हुई आलमगीर का मुँह सिरहाने पड़े हुए
 रेशमी कपड़े से ढाँप देती है । कातिब घुटने टेक कर दोनों हथेलियाँ
 जोड़ कर मन ही मन कुछ पढ़ने लगता है ।]

[परवा गिरता है ।]

कलंक-रेखा

सकेत

राजस्थान का जौहर ससार के इतिहास की अद्वितीय घटना है। यह वह ज्वाला थी जो राजस्थान की नारियों के तेज के समक्ष फीकी पड़ गई और उसने उन नारियों को अपने अक मे उसी प्रकार स्थान दिया जिस प्रकार लाल मखमल की म्यान श्वेत चमकती हुई तलवार को अपने हृदय मे स्थान देती है।

कुमारी कृष्णा का जौहर विष की ज्वाला मे हुआ। वह ज्वाला, तीन बार प्रयत्न करने पर भी कुमारी कृष्णा के तेज को न सम्हाल सकी। उत्सर्गमयी कृष्णा ने चौथी बार बलपूर्वक विष की ज्वाला मे शयन किया।

राजस्थान कायर की भाँति देखता रहा कि उसकी रजत रश्मि व्यर्थ हो पृथ्वी मे विलीन हो रही है। विद्युत की चमकती हुई वह उज्ज्वल रेखा सारे राजस्थान के लिए कलक-रेखा बन गई।

नाटक के पात्र

महाराणा भीमसिंह	—उदयपुर के महाराणा
महारानी चावडी	—महाराणा भीमसिंह की पत्नी
कृष्णाकुमारी	—महाराणा की पुत्री
देवला	—कृष्णाकुमारी की मम्मी
जवानसिंह	—महाराणा भीमसिंह के भाई
सग्नाराम सिंह	—शक्तावत सरदार

सँपेरा और अन्य चार व्यक्ति

स्थान	—उदयपुर
काल	—२१ जुलाई, १८१०
समय	—संध्या के ५ बजे

अभिनय

यह नाटक 'आकाश वाणी' दिल्ली में 'दिल्ली रेडियो नाट्य महोत्सव' में २७ मार्च १९५१ को प्रमाग्नि हुआ।
भूमिका इस प्रकार थी —

महाराणा भीमसिंह — श्री मुख्तार अहमद (लग्ननऊ)

महारानी चावडी — श्रीमती विद्या गज्

कृष्णाकुमारी — श्री वर्षा रानी

देवला „ राजकुमारी

जवानसिंह „ विजय बोस (डलाहावाद)

सग्राम सिंह „ देवराज दिनेश

सँपेरा „ शभूनाथ

अन्य व्यक्ति { „ एच० के० वर्मा

{ „ एन० एन० निगम

{ „ स्वदेश कुमार

कलंक-रेखा

[राजमहल के समीप एक उपवन । जवानसिंह और देवला में बात -
चीत हो रही है । देवला फूल चुन रही है ।]

जवानसिंह—(विह्वल स्वर में) एक बात पूछूं, देवला ?

देवला—हाँ, कुँवर चाचा ! लेकिन

जवानसिंह—लेकिन क्या ?

देवला—मुझे राजकुमारी के लिए फूल चुन कर पूजा की सामग्री सजानी
है । पहले उनके लिए फूल चुन लूं ।

जवानसिंह—(अप्रतिभ शब्दों में) फूल-सी राजकुमारी के लिए फूल ।
(सम्हल कर) बहुत अच्छा । मैं सोच रहा था कि फूल के
स्थान पर कही राजकुमारी ही पूजा की सामग्री न बन
जायें ।

देवला—यह तो सच है, कुँवर चाचा ! जब राजकुमारी कृष्णा देव-
प्रतिमा के सामने नत-मस्तक होती है, तो ज्ञात होता है, जैसे
देव-प्रतिमा के चरणों पर एक सजीव फूल चढ़ा हुआ है ।

जवानसिंह—(सोचते हुए) सजीव फूल सजीव फूल ! (सहसा)
एक बात पूछूं, देवला ?

देवला—हाँ, कुँवर चाचा ! लेकिन

जवानसिंह—फिर लेकिन ?

देवला—हाँ, आजकल राजमन्दिर के विषय में बात पूछी नहीं जाती ।
० या तो कही जाती है, या सुनी जाती है ।

जवानसिंह—आजकल ऐसा क्यों, देवला ?

देवला—इसलिए कि प्रश्न का चिह्न बिच्छू के डक की तरह टेढ़ा है, जिसमें

जहर भरा रहता है । जब तक प्रश्न का उत्तर न मिल जाय, तब तक तो सन्देह के जहर में मन डूबा ही रहता है ।

जवानासिंह—ठीक है, तो मैं सन्देह नहीं करूँगा, देवला । मैं सन्देह नहीं करूँगा । मैं यही पूछना चाहता मैं यही सुनना चाहता था कि राजकुमारी का विवाह

देवला—(बीच ही में) बस, कुँवर चाचा । आगे नहीं । आप कुँवर हैं, फिर भी राजपूती रक्त इस वाक्य को पूरा करने की शक्ति नहीं रखता । राजपूतों की आँखों की लाली कुसुम्मा-पात्र में तैर रही है । विदेशियों के लिए हमारे शस्त्र मखमली म्यानों में गहरी नीद ले रहे हैं । ये प्रश्न रक्त से पूरे किए जाते हैं, शब्दों से नहीं ।

जवानासिंह—(टूटते स्वर में) देवला । तुम ठीक कह रही हो, तुम ठीक कह रही हो, लेकिन लेकिन

देवला—कुँवर चाचा । आप इतने घबराए हुए क्यों हैं ? आपके मुख से शब्द ठीक-ठीक निकलते भी नहीं । (गहरी नज़र से देखते हुए) अच्छा । और यह कटार यह कटार आपने क्यों खोल रखी है ?

जवानासिंह—(घबरा कर) यह कटार ? नहीं तो नहीं तो अच्छा । यह कटार ? यह कटार, जो मेरी कमर में है ? अरे, इसका मखमली म्यान खराब हो गया था । मैंने उसे निकाल दिया । तुम्हीं ने तो अभी कहा था कि विदेशियों के लिए हमारे शस्त्र मखमली म्यानों में गहरी नीद ले रहे हैं । इसलिए मैंने पहले से ही इस कटार का म्यान निकाल कर फेंक दिया । . . और तुम्हारी सखी तो यही कही होगी । मुझे मिली नहीं ।

देवला—राजकुमारी पूजा के वस्त्र धारण करने गई हैं । उन्होंने मुझसे फूल चुनने के लिए कहा और (लोगों की बातचीत का सम्मिलित स्वर, जो दूर से धीरे-धीरे पास आता जा रहा है ।)

एक स्वर—क्यो, यह कैसे हुआ ?

दूसरा स्वर—वह कहाँ थी ?

तीसरा स्वर—क्या मर गई ?

चौथा स्वर—नही, अभी जीवित होगी ।

(सँपेरे की बीन सुन पड़ती है ।)

जवानासिंह—(घबराए स्वर में) कुछ लोग आ रहे हैं । अच्छा देवला !
अब मैं जाता हूँ ।

देवला—ठहरिए, ठहरिए, देखिए, बाहर कौन है ? क्या दुर्घटना हो गई,
किसी को सर्प ने काट लिया ?

जवानासिंह—(विह्वल स्वर में) नहीं, नहीं कोई दुर्घटना नहीं हो
सकी । कोई दुर्घटना नहीं हुई । कृष्णा को कृष्णा को यह
मालूम न हो कि मैं मैं यहाँ आया था । (दूर जाता
हुआ स्वर) मैं यहाँ आया था । (प्रस्थान)

देवला—(बुहराते हुए) कृष्णा को मालूम न हो कि मैं यहाँ आया था ।
(सोचते हुए) कुछ समझ में नहीं आता । कुंवर चाचा जवान
सिंह कटार लेकर आए और चले गए । और और कृष्णा
को मालूम न होने पावे । (बीन बन्द हो जाती है ।)

(नेपथ्यमें एक स्वर—जहर तो सारे शरीर में फैल गया ।)

दूसरा स्वर—अब तो वह हमेशा के लिए सो गई ।

तीसरा स्वर—बीन बजाने से क्या होगा ?

पहला स्वर—बीन बजाने से सर्प आ जायगा और काटी हुई जगह से जहर
खींच लेगा ।

तीसरा स्वर—न-जाने साँप कहाँ होगा ।

दूसरा स्वर—अरे, ये सब कहने की बातें हैं । कहाँ का साँप और और
कहाँ का जहर खींचना ।

तीसरा स्वर—हाय, बेचारी मर गई । अभी उमर ही क्या थी ?

पहला स्वर—भाग्य की बात ।

(बीन थोड़ी देर तक बजती है ।)

देवला—(पुकार कर) ए बीनवाले ! (बीन रुक जाती है ।) क्या इसे साँप ने काट लिया ?

बीनवाला—हाँ, अन्नदाता ! जहर चढ़ गया है ।

देवला—तो इसका जहर नहीं उतार सकते ?

बीनवाला—अच्छा, अन्नदाता ! बीन बजा कर मर्प को बुला रहा हूँ । वही सारा जहर खींच लेगा ।

देवला—ठीक है । पर इसे यहाँ से दूर ले जाओ । यहाँ राजकुमारी के घूमने की जगह है । इस बेचारी स्त्री को देख कर राजकुमारी को दुःख होगा ।

बीनवाला—अच्छा, अन्नदाता ! (अपने साथियों से) चलो जी, उठाओ । दूर ले चलो इसे ।

(बीन बजती है । धीरे-धीरे उसका स्वर दूर होता जाता है ।)

देवला—(गहरी साँस ले कर) बेचारी स्त्री ! दो घटे पहले हँस रही होगी ! इस समय जमीन पर पड़ी है ! ओह, कितना भयानक जहर है !

(राजकुमारी कृष्णा का प्रवेश)

कृष्णाकुमारी—देवला !

देवला—राजकुमारी !

कृष्णा—देवला ! तू फूल चुनने के लिए आई थी, यही रुक गई ?

देवला—(अपराधी के-से स्वर में) राजकुमारी ! मैं

कृष्णा—(धींच ही में) बीन सुन रही थी ? तेरा बचपन अभी तक नहीं गया ! कौन था वह बीनवाला ?

देवला—कोई नहीं, राजकुमारी ! साँपो का खेल दिखलाता था । थोड़ी देर देखने लगी ।

कृष्णा—पूजा के समय साँपो का खेल । ठीक है, साँप भी तो भगवान
एकलिंग के मस्तक के आभूषण है ।

देवला—और राजकुमारी । कुँवर चाचा भी आए थे ।

कृष्णा—कुँवर चाचा ? जवानसिंह ? यहाँ ? किसलिए ?

देवला—मैं क्या जानूँ । उनकी कमर में खुली हुई कटार थी ।

कृष्णा—खुली हुई कटार ? अपनों के लिए या दूसरों के लिए ?

देवला—दूसरों के लिए तो शक्ति ही नहीं रह गई, अपनों के लिए ही होगी ।

और जाते समय मुझसे कह गए कि राजकुमारी को मालूम न हो
कि मैं यहाँ आया था ।

कृष्णा—अच्छा । तो तूने यह बात मुझसे क्यों कह दी ?

देवला—(हँस कर) मैं राजकुमारी की सखी हूँ, कुछ उनकी सखी तो
हूँ नहीं ।

कृष्णा—सच है, मेरी सखी मुझ से कोई बात नहीं छिपा सकती । लेकिन
देवला, कुँवर चाचा और कुछ कह रहे थे ?

देवला—बातों-ही-बातों में वे आपके विवाह की बात पूछना ही चाहते
थे कि मैंने दूसरी बात छेड़ दी ।

कृष्णा—(अस्फुट स्वर में) मेरे विवाह की बात ?

देवला—हाँ, मैंने कहा कि कुँवर चाचा । आजकल राजमन्दिर के विषय
में बात पूछी नहीं जाती, कही या सुनी जाती है ।

कृष्णा—सच देवला । आज हमारे राजमन्दिर की स्थिति ही ऐसी है,
जिसमें विवाह की बात मखमली म्यान की गहराई है, जिसमें
कटार या तलवार छिपी रहती है । मुझे तो इसमें कोई रुचि
नहीं है ।

देवला—ऐसा क्यों, राजकुमारी ?

कृष्णा—देवला । मैं चारों ओर एक विचित्र उदासी का अनुभव कर रही
हूँ । पिता जी के मस्तक पर चिन्ता की रेखाएँ प्रति दिन लम्बी

होती जा रही है । माता जी मुझे देख कर न जाने क्यों आँसुओं से आँखें भर लेती है । मैं कारण जानना चाहती हूँ, तो मुझे कोई ठीक ढंग से उत्तर ही नहीं देता । राजमन्दिर का सारा वातावरण जैसे सर्प की तरह कुण्डली मार कर बैठा है । कही मुझे डस न ले ! तू जानती है, ऐसा क्यों है ?

देवला—मैं नहीं जानती, राजकुमारी !

कृष्णा—यदि तू नहीं जानेगी, तो कौन जानेगा, देवला ? यह आकाश की निर्मलता जैसे किसी सन्यासी की साधना है, जो ससार से ऊपर उठ चुकी है । यह ठढी वायु जैसे किसी तपस्विनी का आशीर्वाद है, जिससे ससार से विराग उत्पन्न होता है । और मेरे मन में उदासी ऐसी बैठ गई है, जैसे किसी का घर जल गया हो और वह किसी पेड़ के नीचे सिर झुकाए बैठा हो ।

देवला—राजकुमारी ! क्षमा करे । यदि समय का चक्र कभी उदासी की तरफ घूम जाय, तो क्या ऐसी बातें भी सोची जानी चाहिएँ, जैसी आप सोच रही हैं ? यह तो एक बादल है, जो चन्द्रमा के ऊपर आ गया है । अभी आया है, अभी चला जायगा ।

कृष्णा—नहीं देवला ! यह वह बादल नहीं है, जो चन्द्रमा के ऊपर से चला जाय । यह तो चन्द्रमा के भीतर का कलक है, जो उसके हृदय में समा कर बैठा है, सदैव के लिए । इससे उसे मुक्ति नहीं है ।

देवला—राजकुमारी ! छोड़िए इन बातों को । देखिए मैंने आपके लिए कितने सुन्दर फूल चुने हैं । यह जुही का फूल देखिए, जो सुगन्धि की साधना में इतना छोटा हो गया है । ऐसा ही तो आपका जी छोटा हो रहा है । लेकिन इसकी सुगन्धि आपके रूप की तरह चारों दिशाओं में फैली है ?

कृष्णा—पर देवला ! जुही के कितने फूल धूल में गिरे हुए हैं ? मिट्टी में मिलने के लिए ही तो यह रूप नहीं है ?

देवला—राजकुमारी ! यह फूल तो किसी के कण्ठ की श्री और शोभा बढ़ायगा, और देखिए, यह चम्पक, जिसके प्राणों की सुगन्धि उसके हृदय की पीत आभा में साकार हो उठी है । पर यह आपके चरणों की कान्ति भी नहीं पा सका बेचारा चम्पक

कृष्णा—इसके हृदय के पीले रंग में जैसे मेरा सुख-सूर्य अस्त हो रहा है !

देवला—नहीं राजकुमारी ! इसका यह पीत वर्ण आपके विवाह के हरिद्रा रंग का निमंत्रण है ।

कृष्णा—(ग्लानि से) विवाह ! सभी लोग इसकी कामना करते हैं । मेरे मन में न जाने क्यों इसकी चाह नहीं है । माली एक पौदे को अपने वाग में बड़े प्यार से इसलिए लगाए कि फूल निकलने के समय वह उस पौदे को किसी अपरिचित माली को सौंप दे !

देवला—ससार की परम्परा तो यही है, राजकुमारी !

कृष्णा—यह परम्परा मुझे नहीं चाहिए । देवला ! जा । देर हो रही है । इन फूलों की एक सुन्दर-सी माला गंथ दे । आज भगवान एक-लिंग का कण्ठ इससे सजाऊँगी ।

देवला—राजकुमारी ! कण्ठ सजाने का ध्यान तो आपको आया !
(दबी हुई हँसी) जाती हूँ । (प्रस्थान)

कृष्णा—(उदास हँसी हँस कर) कण्ठ सजाने का ध्यान ! विवाह ! परम्परा ! यह सब कुछ नहीं । (देख कर) अरे, पिताजी आ रहे हैं और माताजी भी साथ हैं ? मैं अलग हट जाऊँ । (अलग हट जाती है) महाराणा भीमसिंह और महारानी का प्रवेश)

महाराणा—यह एकान्त ठीक है । यही अपने प्राणों का क्रन्दन तुम्हें सुनाऊँगा, महारानी !

महारानी—महाराणा ! जिस राज्य की नारियों ने क्रन्दन नहीं किया, वहाँ महाराणा के प्राणों का क्रन्दन एक अनहोनी घटना है ।

महाराणा—सचमुच महारानी ! आज बाप्पा रावल के सिंहासन का भार

शृगालो के कन्धो पर है । सूर्य ने चमकने के लिए जुगनुओ से प्रत्नाय माँगा है और समुद्र अपने गर्जन के लिए भीगुरो के स्वरो का भिक्षुक है । तभी तो महाराणा का हृदय आज क्रन्दन करता है, जिसे शब्द भी अगीकार करने में अपना अपमान समझते हैं । वह क्रन्दन प्राणों में ही सिमट गया है और राजनीति की कगारों से पिस रहा है ।

महारानी—तब महाराणाजी ! मैं उन कगारों को काटूंगी ।- मैं क्षत्राणी हूँ, प्रलय की घटा बन कर ऐसी बरसूंगी कि उसमें कगारे ही नहीं, प्राणों के क्रन्दन भी डूब जायेंगे । और यदि वे नहीं डूबें, तो जौहर की लपटों से उनमें चिनगारियाँ भर दूंगी । किन्तु मेवाड़ के मस्तक को मलिन न होने दूंगी ।

महाराणा—तुम धन्य हो, महारानी ! किन्तु राजनीति जौहर से भी अधिक भयानक है । इस राजनीति की बाढ़ में चित्तौड़ की तीन चिताएँ डूब चुकी हैं, अब अब सारा उदयपुर डूबने को है ।

महारानी—किन्तु महाराणा ! जो अग्नि कभी शीतल नहीं हुई, वह जल की धारा में कैसे डूब सकती है ?

महाराणा—कृष्णा के विवाह के प्रसंग में ।

महारानी—कृष्णा के विवाह के प्रसंग में ?

महाराणा—हाँ, महारानी ! अमीरखाँ एक बड़ी सेना लेकर उदयपुर की सीमा पर लोहे की दीवार बन कर खड़ा हुआ है । उसने चूडावत अजीत सिंह के द्वारा कहलाया है कि यदि आप अपनी कन्या का विवाह जोधपुर के महाराजा मानसिंह से नहीं करेंगे, तो मैं आपके राज्य को बरबाद कर दूंगा ।

महारानी—किन्तु जब हम कृष्णा का टीका जयपुर के महाराज जगत-सिंह को भेज चुके हैं, तब जोधपुर के महाराज मानसिंह से हम

सम्बन्ध की बात ही कैसे कर सकते हैं ? और फिर अमीरखाँ को हमारे आपसी सम्बन्ध से क्या मतलब ?

महाराणा—महारानी, राजनीति आग की ज्वाला है, जो चाहे जिस दिशा में जल सकती है । जो आग पाकशाला का शृंगार है, वह सारे घर को जला भी सकती है ।

महारानी—लेकिन अमीरखाँ तो पहले उदयपुर नरेश का सहायक था ?

महाराणा—अब जोधपुर-नरेश का मित्र है । महाराज मानसिंह ने अमीरखाँ को घूस देकर अपनी तरफ मिला लिया है ।

महारानी—तो अमीरखाँ से कहला दीजिए कि कृष्णा का सबध जयपुर में स्थिर हो चुका है, अब जोधपुर से किसी प्रकार की बात नहीं हो सकती ।

महाराणा—तो अमीरखाँ उदयपुर में आग लगा देगा । हमारी समस्त मातृभूमि ही जौहर की चिता बन जायगी ।

महारानी—तो क्या जयपुर-नरेश, जो हमारे सम्बन्धी होने जा रहे हैं, हमारी रक्षा न करेंगे ? युद्ध की छाया में ही हम अपनी बेटी का विवाह करेंगे ।

महाराणा—यह कैसे होगा, महारानी । जयपुर-नरेश के सरदारों में पहले से ही फूट है । वे जोधपुर के युद्ध से वापस चले आए हैं । हमारे सरदारों में भी फूट है । अब उदयपुर और जोधपुर की सम्मिलित सेना भी अमीरखाँ का कुछ नहीं बिगाड़ सकती ।

महारानी—अमीरखाँ इतना प्रचण्ड है ?

महाराणा—हाँ, और एक दूसरी कठिनाई भी है । यदि हम जयपुर के जगतसिंह जी के यहाँ से टीका वापस माँगते हैं, तो वे अपना अपमान समझ कर हम पर आक्रमण कर बैठेंगे । इस प्रकार जयपुर और जोधपुर दोनों ही हमारे शत्रु होंगे और अमीरखाँ

कभी इस ओर और कभी उस ओर से हमारे ऊपर मौत और आग बरसाने में पीछे नहीं रहेगा ।

महारानी—तब क्या होगा ?

महाराणा—हमारी मातृभूमि श्मशान बनने की प्रतीक्षा में है । सिधिया ने सदाशिवराव के द्वारा मेवाड से सोलह लाख वसूल कर हमारा केष समाप्त कर दिया है । उदयपुर के पास शक्ति नहीं है कि वह युद्ध करे ।

महारानी—तब उदयपुर प्राण देकर युद्ध करेगा ।

महाराणा—किन्तु महारानी ! क्या एक कन्या के पीछे मेवाड, अम्बर और मारवाड के हजारों वीरों को रक्त में डूब जाने दूँ ? जिन सरदारों ने वशानुगत मेवाड की सेवा में अपना जीवन व्यतीत किया है क्या उनके पवित्र रक्त को पानी की तरह बह जाने दूँ ? एक ओर कृष्णा का विवाह, दूसरी ओर सहस्रो वीरों के पवित्र रक्त के व्यर्थ बहाने का प्रश्न है ।

महारानी—तो महाराणा ! आप अपने वीरों को बचाइए राजस्थान की नारियाँ अपनी तलवार उठाएँगी ।

महाराणा—भावुक मत बनो, महारानी ! राज्य की दृष्टि से सोचो कि क्या राजा अपने परिवार के एक व्यक्ति की रक्षा के लिए अपनी निरपराध प्रजा के सहस्रो वीरों का बलिदान कर दे ? अपनी कन्या की रक्षा में यदि अपनी मातृभूमि के विनाश के बीज बो दे, तो क्या भविष्य का इतिहास भीमसिंह के नाम पर नहीं थूकेगा ? कन्या के छोटे-से जीवन की हल्की साँस के लिए एक तूफान को निमन्त्रण दूँ, जो बाप्पा रावल और महाराणा प्रताप की मातृभूमि के अग्र-अग्र क्षत-विक्षत कर दे ? एक मुकुमार शरीर की रक्षा के लिए लाखों अग्नि-ज्वाली शरीर युद्ध की अग्नि में जलाए जावे ? सहस्रो सिसोदियों की वीरता

की ज्योति एक फूँक से बुझ जाने दी जाय ? एक लहराती हुई चिनगारी से सारे नगर में आग लग जाने दी जाय ?

महारानी—तो फिर आपने क्या उपाय सोचा है ?

महाराणा—उपाय ? मेरे लिए कोई उपाय नहीं है, महारानी ! मेरा राजमुकुट आज वह धूमकेतु है, जो उदास आकाश के मस्तक पर रखा हुआ है और जिसके उदय होने पर अमंगल और भय की आंशका होने लगती है । यह राजमुकुट, जो मुगलों की तलवार के वेग से भी अपने स्थान से नहीं हटा, जो राजपूतों के रक्त की नदियों पर सदैव तैरता रहा, एक क्षण को भी न डूबा, आज मेरे आँसू की एक बूंद में डूबना चाहता है ! महारानी, बचाओ !
(चीख कर) मुझे इस कलक से बचाओ !

महारानी—महाराणा

महाराणा—(बीच ही में) आज चित्तौड़ के जौहर की ज्वाला मेरे रोम-रोम में जल रही है ! सिसोदियों की वश-मर्यादा आकाश का हृदय चीरते हुए वज्र की तरह मेरे मस्तक पर गिरने जा रही है ! (चीख कर) बाप्पा रावल, इस वश को कलकित करने वाले भीमसिंह को देख रहे हो ? उसके जीवन को मृत्यु का शृंगार दो ! उसके कष्ट को प्रलय की अग्नि बना दो, जिससे वह एक क्षण में भस्म हो जाय !

महारानी—महाराणा, ऐसे अशुभ वाक्य मैं नहीं सुन सकूंगी । मैं स्वयं इसका उपाय खोजूंगी ।

महाराणा—तुम किस प्रकार उपाय खोजोगी, महारानी ? एक ओर अमीरखाँ यमराज की तरह मृत्यु का जाल खोले खड़ा है, दूसरी ओर हमारे सरदारों की आपसी द्वेष-भावना ने एक-दूसरे का रक्त पीने का व्रत लिया है । हमारी शक्ति की तलवार टूट गई है, केवल मूठ हाथ में है । आज बाप्पा रावल की भूमि अपने

सम्मान के लिए सतृष्ण नेत्रों से हमारे बाहुबल की ओर देख रही है और हम अपनी निर्बलता में अपनी मातृभूमि की ओर देख भी नहीं सकते । सिसोदिया-वश की ऐसी दशा इतिहास में पहले कभी नहीं हुई ।

महारानी—तो क्या हम अपनी मातृभूमि की रक्षा कर ही न सकेंगे ?

महाराणा—चूडावत सरदार अजीतसिंह ने मातृभूमि की रक्षा का एक उपाय प्रस्तुत किया है ।

महारानी—कौन-सा ? (उतावली से) शीघ्र बतलाइए, शीघ्र बतलाइए ।

महाराणा—मैंने वह प्रस्ताव स्वीकार न करते हुए कहा अजीतसिंह । तुम तुम अपनी तलवार उठाओ और अपने महाराणा का कलक रक्त से धो दो । अजीतसिंह ने कहा अजीतसिंह ने कहा उदयपुर के महाराणा को कर्तव्य-वेदी पर अपना हृदय काटना पड़ता है । महाराणा लाखा ने मेवाड़ की अग्नि-माता में अपने पुत्रों के सिर फूलों की तरह गूँथे थे, महारानियों ने अपने पुत्रों को सुसज्जित कर रण-भूमि में भेजा था । आप एक पुत्री के लिए ही दुखी हैं ?

महारानी—एक पुत्री के लिए ?

महाराणा—हाँ, सभी सरदार कहते हैं कि इसके अतिरिक्त मेवाड़ का मान किसी प्रकार भी नहीं बचाया जा सकता ।

महारानी—चूडावत अजीतसिंह का क्या प्रस्ताव था ? मैं शीघ्र सुनना चाहती हूँ, मैं शीघ्र सुनना चाहती हूँ ।

महाराणा—ओह ! मैं उसे कैसे कहूँ ? महारानी ! मेरे कण्ठ से उसकी ध्वनि नहीं निकल सकेगी ।

महारानी—मातृभूमि की रक्षा के लिए प्रत्येक बात कही और सुनी जा सकती है ।

महाराणा—तो सुनो अपना हृदय पत्थर का बना कर सुनो ! अजीतसिंह

ने यह प्रस्ताव किया कि अम्बर, मारवाड और मेवाड के सहस्रो
मैनिको के रक्त से मेवाड को नहलाने की अपेक्षा यह उचित होगा
कि युद्ध का कारण ही दूर कर दिया जाय ।

महारानी—कारण ही दूर कर दिया जाय ? मैं कुछ समझी नहीं ।

महाराणा—बात यह है कि व्यर्थ के युद्ध की अपेक्षा यह अच्छा होगा
कि कृष्णा को मृत्युदण्ड

महारानी—(बीच ही में) ओह महाराणा ! यह आप क्या यह आप
क्या कह रहे हैं ! बेचारी कृष्णा मेरी कृष्णा को मेरी कृष्णा को
यह दण्ड ! ऐसा नहीं हो सकता ऐसा नहीं हो सकता

(जवानसिंह का प्रवेश)

महाराणा—कौन ? कुँवर जवानसिंह ! तुम यहाँ हो ! तुम्हारी कमर
में खुली हुई कटार है, पर उस पर रक्त का कोई धब्बा नहीं है ?
अब उस कटार पर मेरे रक्त का धब्बा लगेगा ।

जवानसिंह—महाराणा ! मुझे क्षमा करे । मैं कृष्णा के कक्ष में कटार
लेकर गया था, लेकिन कृष्णा मुझे मिली नहीं । देवला ने कहा
कि वे स्नानागार में हैं । मैं वही से वापस लौट रहा हूँ ।

महारानी—(करुण स्वर ने) मेरी कृष्णा, मेरी कृष्णा ! मैं कृष्णा पर
यह दण्ड होते हुए नहीं देखूँगी ! मैं कृष्णा के पास जाऊँगी,
अभी जाऊँगी ! मेरी कृष्णा (चीखते हुए) मेरी कृष्णा •
कृष्णा (प्रस्थान)

महाराणा—(बिह्वल कण्ठ से) गई ! माँ का हृदय ! ! माँ की ममता ! ! !
कुँवर जवानसिंह ! अब इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं
है कि मैं अपने प्राण दे दूँ ! न तो मातृभूमि की दुर्दशा ही देखूँगा
और न अपनी कृष्णा का प्राणदण्ड ही ! !

[कृष्णाकुमारी का प्रवेश]

कृष्णा—(सयत स्वर में) यह तो बहुत सरल है, पिताजी ! आपकी

कृष्णा हँसते-हँसते इस दण्ड को स्वीकार करेगी ।

महाराणा—(चीखकर) ओह कृष्णा ! तू यहाँ कहाँ, मेरी बेटी ?

तूने कुछ सुना तो नहीं ?

कृष्णा—मैंने सब सुन लिया है, पिताजी ।

महाराणा—(बिह्वल स्वर में) नहीं बेटी ! यह भूठ है, बिल्कुल भूठ है ।

जो अपनी शक्ति का लोहा शत्रु से नहीं मनवा सकते, वे ही ऐसी बातें कह सकते हैं ।

कृष्णा—नहीं पिताजी ! चूडावत अजीतसिंह ने जो प्रस्ताव किया है, वह अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए है । मैं उस प्रस्ताव से सहमत हूँ । आप तुझे प्राणदण्ड दीजिए ।

महाराणा—किस अपराध पर दूँ, बेटी ? तू मेरे हृदय से पूछ कि मैं ससार की सारी सम्पदा प्राप्त कर भी तुझे नहीं खोना चाहता ।

कृष्णा—किन्तु पिताजी, मातृभूमि सारे ससार की सम्पदा से भी अधिक मूल्यवान है और उसकी रक्षा मुझे प्राण देकर भी करनी चाहिए ।

महाराणा—कृष्णा, तेरे प्राणों का मूल्य जानती है, क्या है ? समस्त राजपूतों की कायरता का ज्वलन्त उदाहरण । क्या तू राजपूतों को सदैव के लिए कलकित करना चाहती है ?

कृष्णा—पिताजी, राजपूतों के मस्तक पर कलक तो इस बात से लगेगा कि उन्होंने एक पुत्री के मोह में अपनी मातृभूमि के पवित्र मस्तक पर शत्रुओं के पेंरों के चिह्न लग जाने दिए । क्या एक फूल को बचाने के लिए माली अपने सारे बाग में आग लगा दे ?

महाराणा—बेटी, तू मेवाड़ की शोभा है । तेरे बिना मेवाड़ श्मशान की भाँति हो जायगा । और तब वीरों की वाणी शृगालों के कोलाहल से अधिक नहीं रहेगी । उनकी तलवार, बच्चों के खिलवाड़ की वस्तु बन जायगी ।

कृष्णा—पिताजी, मेवाड़ की रही-सही जो शोभा है, उसे मेरे कारण

नष्ट न होने दीजिए । महारानी पद्मिनी के कारण मेवाड मे मृत्यु नाची थी । उस इतिहास के दुहराने का अवसर न आने दीजिए, पिताजी ! ये सच्चे स्वामिभक्त मेवाड-निवासी ! जिन्होंने वर्षों युद्ध और विपत्ति मे मेवाड का साथ दिया है, मेरे अकेले जीवन के लिए युद्ध की बलि बने ? मेरी सुन्दरता के पीछे ? जो आज है, कल नहीं ! फिर यह आज ही समाप्त क्यों न हो जय्य ? (कुँवर जवानसिंह से) कुँवर चाचा, निकालो अपनी कटार और सुन्दरता के छद्मवेश मे छिपे इस जीवन को समाप्त कर दो

महारानी—(क्रन्दन के स्वर मे) ओह, मुझसे यह देखा नहीं जायगा ! नहीं देखा जायगा ! महारानी कहाँ है, कहाँ है महारानी ? (पुकार कर) महारानी (जाते हुए) महारानी महारानी (प्रस्थान)

कृष्णा—(दृढ़ता से) कुँवर चाचा, मैंने सब बातें सुन ली हैं । अच्छा होता, यदि मैं तुम्हें पहले ही मिल जाती और तुम अपना काम पूरा कर लेते ! कुँवर चाचा, मातृभूमि की रक्षा के लिए राजस्थान की नारियो ने क्या नहीं किया ?

जवानसिंह—(करुण स्वर में) कृष्णा !

कृष्णा—कुँवर चाचा, यदि मैं पुत्री न होकर पुत्र होती, तो क्या आप मुझे मातृभूमि की रक्षा के लिए तलवार लेकर युद्ध मे जाने की आज्ञा न देते ? मैं दुर्भाग्य से पुत्री हूँ, तो क्या मुझे अपनी मातृभूमि के लिए मरने की आज्ञा न मिलेगी ? मेरे कारण उदयपुर की भूमि अपवित्र हो, यह मैं सहन नहीं कर सकूँगी !

जवानसिंह—(शान्त स्वर में) कृष्णा, तू धन्य है । तेरी-जैसी बालिकाओं से ही मेवाड की कीर्ति ससार मे जागती रहेगी ।

कृष्णा—तो कुंवर चाचा ! आप अपनी कटार उठाइए और रक्त के अमृत से मुझे अमर कर दीजिए !

जवानसिंह—बेटी ! मैं क्या कहूँ ? चूडावत अजीतसिंह की इच्छा से और महाराणा की मौन स्वीकृति से ही मुझे यह क्रूर कार्य सौपा गया है । बतला, मैं क्या करूँ ?

कृष्णा—जो प्रत्येक राजपूत को करना चाहिए ! जब जयपुर और जोधपुर दोनों ही उदयपुर के रक्त-पान का व्रत ले चुके हैं, तो उन्हें ऐसा रक्त देना चाहिए, जो उनके कण्ठ में आग की लपट बन कर उनकी तृष्णा सदैव के लिए शान्त कर दे !

जवानसिंह—तू ठीक कह रही है, बेटी ! पर मुझसे यह न होगा यह न होगा !

कृष्णा—कुंवर चाचा ! आप राजाज्ञा की अवहेलना कर रहे हैं । मातृभूमि के अपमान के साथ-ही-साथ आप अपने महाराणा की भी अवज्ञा कर रहे हैं ।

जवानसिंह—मैं इस अवज्ञा का दण्ड सहन कर लूँगा ।

कृष्णा—पर कुंवर चाचा, मेवाड़ की जन्मभूमि आप को कभी क्षमा नहीं कर सकेगी ! अमीरखाँ की सहायता से जोधपुर और जयपुर हमारे नगर पर टूट पड़ेंगे और हमारी मातृभूमि श्मशान बन जायगी ! मैं कहती हूँ, कुंवर चाचा ! मेरी मृत्यु से जयपुर और जोधपुर दोनों राजवंशों का क्रोध समाप्त हो जायगा और शत्रुओं का हृदय ऐसी करुणा से भर जायगा कि उदयपुर पर आने वाली और विपत्तियाँ भी दूर हो जायेंगी !

जवानसिंह—ऐसी बात है, तब कृष्णा, मैं यह राजाज्ञा पूरी करूँगा ! भुकाओ अपना सिर, मैं एक ही प्रहार में इसे काट कर मेवाड़-भूमि को समर्पित कर दूँ !

कृष्णा—(हर्ष से गद्गद होकर) आप धन्य हैं चाचा ! ओह, आप

कितने धन्य है ! अपने चाचा के हाथों से मैं मृत्यु का सुख पाऊँगी, इससे बढ़कर मेरा सौभाग्य और क्या होगा ! कुँवर चाचा ! आप कितने महान् है !

जवानसिंह—पर बेटी, मेरा हृदय कॉप रहा है ! अपने ही हाथ से अपनी इतनी सुन्दर बेटी को इस निर्दयता

कृष्णा—कुँवर चाचा, आप भी तो तेजस्वी राजपूत हैं, आप को यह निर्बलता शोभा नहीं देती ।

जवानसिंह—कृष्णा बेटी ! फिर हमारा इतिहास भी यह लिखेगा कि कुँवर जवानसिंह ने—निष्ठुर और कायर जवानसिंह ने—निरपराध कृष्णा के रक्त से अपने हाथ कलकित किए ! नहीं कृष्णा ! यह नहीं होगा !

कृष्णा—पर आप चूडावत अजीतसिंह के सामने इस कार्य को पूरा करने का वचन दे चुके हैं ! राजपूत को अपने वचनों का पालन करना चाहिए ।

जवानसिंह—मैंने वचन अवश्य दिया था, पर कृष्णा ! तुम्हें देख कर उस वचन के प्रति मेरे मन में अपने-आप से घृणा होती है ! और जब तूने कोई विरोध नहीं किया—क्रोध नहीं किया और भोली हरिणी के समान आत्म-समर्पण कर दिया, तो मैं किस शक्ति से तेरे बमल शरीर को गिराई की भाँति शस्त्र से बेध दूँ ! अमृत के कुण्ड में हलाहल की वर्षा कर दूँ ! और कपूर के समान तेरे सुन्दर शरीर में लपकती हुई ज्वाला भर दूँ ! इन हाथों को कलकित करने

कृष्णा—कुँवर चाचा, आप नारियों की कृष्णा लेकर मेवाड का उद्धार नहीं कर सकेगे । और चाचा, वीरों के हाथ से कलक भी साका बन जाता है । फिर यह तो बलिदान है, बलिदान से हाथ

पवित्र होता है, कलकित नहीं ! यह बलिदान है ! कुल-लक्ष्मी की पूजा है ।

जवानासिंह—कुल-लक्ष्मी की पूजा ।

कृष्णा—निस्सन्देह, कुंवर चाचा । यह कुल-लक्ष्मी की पूजा है, अर्चना है ।

जवानासिंह—तो फिर, तो फिर उठाऊँ अपनी कटार ?

कृष्णा—कुंवर चाचा, आप धन्य हैं । मातृभूमि की रक्षा के लिए आपका उत्साह ही कसौटी पर कसा गया है । मन की निर्बलता पर आपके राजपूती हृदय ने विजय प्राप्त की ।

जवानासिंह—तब यह रही कटार ! इसे आज ससार के सबसे कोमल शरीर में प्रवेश पाने का सौभाग्य मिलेगा । मेरी कटार ! तू धन्य है कि आज राजस्थान में एक अमर बलिदान की विधातृ बन रही है । तेरी हल्की-सी गति से कठोर-से-कठोर चीज कट कर टुकड़े-टुकड़े हो सकती है । अब तू कृष्णा के शरीर की कोमलता का स्पर्श कर । उसका शरीर ही तेरा नवीन म्यान बन जाय ।

कृष्णा—चाचा ! आपके हृदय की दृढ़ता अमर हो ।

जवानासिंह—कृष्णा ! तू मेवाड की स्त्रियो में धन्य है । इतिहास तेरे चरित्र से अनन्त काल तक प्रकाशित रहेगा । राजस्थान की नारियाँ तेरे यश के गीत गावेगी । तेरा मरण राजस्थान का त्योहार होगा, पर्व होगा ।

कृष्णा—चाचा, मैं मातृभूमि की वन्दना कर लूँ । मेरी मेवाड जननी ! मेरा शरीर धन्य है कि उसका रक्त तुम्हारे चरणों का प्रक्षालन करेगा । मुझे अपनी गोद ही में जन्म देना, जिससे मैं तुम्हारी रक्षा में अपने प्राणों की बलि फिर दे सकूँ । जननी जन्मभूमि !, तुम्हें मेरा प्रणाम है ।

जवानासिंह—कृष्णा ।

कृष्णा—कुँवर चाचा ! आपका हाथ क्यों काँप रहा है ?

जवानसिंह—नहीं कृष्णा ! मेरा हाथ भाग्य की तरह कठिन है ! भुकाओ अपना सिर !

कृष्णा—मेरे सिर भुकाने से मेरे मेवाड का सिर ऊँचा हो ! (सिर भुकाती है ।)

जवानसिंह—तो फिर यह उठी कटार ! (अपने हाथ के कड़े पर शब्द करता हुआ कटार ऊपर उठाता है) जय एकलिंग !

(करण स्वर में) ओह ! मेरा हाथ काँप रहा है ! यह कटार मुझसे सँभल नहीं सकती ! (कटार के गिरने की आवाज) मैं हत्या नहीं कर सकती ! इतने कोमल शरीर पर यह करता ! नहीं, नहीं !

कृष्णा—कुँवर चाचा !

जवानसिंह—बेटी कृष्णा ! कुँवर चाचा को क्षमा करो ! उससे यह काम नहीं होगा (प्रस्थान करते हुए) नहीं होगा नहीं होगा ! (प्रस्थान)

कृष्णा—चले गए ? कहते हैं, मुझसे यह काम नहीं होगा नहीं होगा, तो किससे होगा ?

(देवला का प्रवेश)

देवला—राजकुमारी, कुँवर चाचा भागते हुए क्यों चले गए ? 'नहीं होगा', 'नहीं होगा' कहते हुए निकल गए ।

कृष्णा—क्या बताऊँ, क्यों निकल गए ? देवला ! मेरा दुर्भाग्य सब जगह मेरा रास्ता रोक लेता है ।

देवला—अब तक आपकी उदासी नहीं गई, राजकुमारी ?

कृष्णा—उदासी ! उदासी नहीं, देवला ! यह तो जीवन का महान् पर्व है !

देवला—तो राजकुमारी ! मैंने भी इस महान् पर्व पर आपकी इच्छानुसार

एक बहुत सुन्दर माला गूँथी है। उससे भगवान एकलिंग की पूजा में शोभा आ जायगी।

कृष्णा—बहुत बड़ी शोभा आ जायगी। तू बहुत अच्छी है, देवला। तूने माला तो गूँथ ही ली, बस एक काम और कर।

देवला—वह क्या, राजकुमारी ?

कृष्णा—भगवान एकलिंग के लिए विष का एक पात्र।

देवला—(चौंक कर) विष का पात्र।

कृष्णा—हाँ देवला। भगवान ने विश्व-कल्याण के लिए कितनी उमंग से मुस्कान के साथ विष-पान किया था। इसीलिए उनका एक नाम नीलकण्ठ भी है। आज मैं भगवान को उन्ही का प्रिय नैवेद्य लगाऊँगी। हलाहल विष।

देवला—राजकुमारी। क्या हलाहल विष भी नैवेद्य की सामग्री है ?

कृष्णा—नैवेद्य की सामग्री तो भक्ति-भावना पर निर्भर रहती है। आज मेरी भक्ति उस सीमा पर पहुँच गई है, देवला। जहाँ हलाहल भी नैवेद्य की सामग्री बन जाता है।

देवला—किन्तु नैवेद्य की सामग्री तो भक्ति-भावना पर निर्भर रहती है। विष को नैवेद्य की सामग्री बनाकर आदर न दीजिए।

कृष्णा—क्यों ?

देवला—इसलिए, राजकुमारी। कि नैवेद्य की सामग्री भगवान को अर्पित करने के बाद व्यर्थ नहीं जायगी। उसे महाप्रसाद मान कर ग्रहण करने की आवश्यकता होगी।

कृष्णा—तुझे इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

देवला—फिर उम नैवेद्य के प्रसाद को ग्रहण कौन करेगा ?

कृष्णा—मैं।

देवला—आप ?

कृष्णा—हाँ देवला ! महाप्रसाद को ग्रहण करने में सकोच कैसा ? मैं उस महाप्रसाद को ग्रहण कर अमर हो जाऊँगी ।

देवला—किन्तु राजकुमारी ! मेरी प्रार्थना है कि इस प्रसाद को आप ग्रहण न करें । यदि ग्रहण करने की आवश्यकता होगी, तो मैं ग्रहण कर लूँगी । देवला के रहते राजकुमारी के लिए यह अवसर न आयगा ।

कृष्णा—तब तो तू स्वार्थी है, देवला ! महापुण्य की भागिनी तू ही होना चाहती है और अपनी राजकुमारी के महापुण्य को तू छीनना चाहती है । स्वार्थी ! (दबी हुई हँसी)

देवला—तब राजकुमारी ! हलाहल के पात्र की आज्ञा न दीजिए ।

कृष्णा—मेरी भक्ति-भावना पर कोई प्रश्न-चिन्ह नहीं लगा सकता, देवला ! तू स्वयं जानती है कि राजमन्दिर के विषय में बात पूछी नहीं जाती, या तो कही जाती है, या सुनी जाती है ।

देवला—मैं जानती हूँ, राजकुमारी ! इसीलिए प्रार्थना करना चाहती हूँ ।

कृष्णा—कौन-सी प्रार्थना ?

देवला—यही कि यदि हलाहल विष को आप नैवेद्य की सामग्री बनाना ही चाहती हैं, तो उस महाप्रसाद का अभिसिचन उस स्थान पर कर दिया जाय, जहाँ मेवाड की नारियो ने अपनी आत्म-रक्षा के लिए जौहर की ज्वाला जलाई थी । इस महाप्रसाद के पाने का अधिकार उन्हीं नारियो को हो, जिन्होंने मेवाड के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग किया हो ।

कृष्णा—(बुहराते हुए) इस महाप्रसाद के पाने का अधिकार उन्हीं नारियो को हो, जिन्होंने मेवाड के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग किया हो ।

देवला—हाँ, राजकुमारी !

कृष्णा—मैं तुझसे सहमत हूँ । तू जा, हलाहल प्रस्तुत कर ।

देवला—जो राजकुमारी की इच्छा । (प्रस्थान)

कृष्णा—देवला ! बेचारी देवला ! महाप्रसाद के नाम से सशक्ति हो उठी ! कही मैं पान कर लूँ ! किन्तु उसके कथनानुसार मैं भी तो उसे पान करने की अधिकारिणी हो सकती हूँ, जब मैंने अपने मेवाड के लिए जीवन उत्सर्ग करने का निश्चय कर लिया है !

[महाराणा और महारानी का प्रवेश]

महाराणा—महारानी !

महारानी—महाराणा ! आपकी बातों से मुझे सन्तोष नहीं होता । मैं यह सब अपनी आँखों से कैसे देख सकूँगी !

महाराणा—(धीरे से) कुँवर जवानसिंह यदि असफल न होते, तो यह बात ही नहीं होती !

महारानी—जवानसिंह मनुष्य है । वह पशु नहीं हो गया है ।

कृष्णा—किन्तु माँ ! इतने मोह, इतनी ममता से भी कही राजपूत अपने जीवन का आदर्श पा सकता है ? कुँवर चाचा ने मुझे निराश कर दिया ! उन्होंने मुझे अपने कर्तव्य के पालन में सहायता नहीं दी । कही तुम भी ममता के वशीभूत हो मुझे कर्तव्य-मार्ग से विचलित न कर दो !

महाराणी—कृष्णा ! क्या तूने इसीलिए जन्म लिया था कि मैं अपनी आँखों के सामने यह भयानक काण्ड होते देखूँ ?

कृष्णा—माँ ! तुम वीर माता हो और मैं वीर कन्या हूँ ! मैं भी तो अपनी मातृभूमि की रक्षा का अधिकार रखती हूँ । मैं तुम्हारे अमृत को लज्जित नहीं करूँगी ।

महारानी—बेटी ! तू धन्य है ! पर तेरा अपराध ही क्या है ?

कृष्णा—माँ ! बलिदान अपराध पर निर्भर नहीं है ! मेवाड की रक्षा के लिए राजस्थान की नारियों ने क्या नहीं किया ? माँ ! तुम ऐसा आदर्श उपस्थित करो कि प्रत्येक माँ अपने मातृत्व में गौरव का

अनुभव करे। माँ ! तुम यह घोषणा कर दो कि माँ अपने शिशु को अमृतमय दूध पिला कर बड़ा करती है केवल इसलिए कि वह अपनी मातृभूमि की रक्षा में विष-पान कर सके। तुम मुझे एक विष का पात्र दे दो, माँ !

महारानी—नहीं बेटी ! यह मैं कभी नहीं कर सकूंगी ! (सिसकती है।)

कृष्णा—माँ ! क्या जौहर की ज्वाला में जलने से पहले माताओं ने अपने गोंद के बच्चों को चूम कर अग्नि में होम नहीं दिया ? तुम भी मुझे विष का प्याला देकर इस जौहर की परम्परा पर आँच न आने दो !

महारानी—बेटी, यह तू क्या कह रही है ! कहाँ मैं सोच रही थी कि कुछ दिनों में अपनी कृष्णा के विवाह का उत्सव मनाऊँगी। सारे राजस्थान की नारियों को निमन्त्रण दूँगी कि वे कृष्णा को सुहाग का आशीर्वाद दे। नगर की स्त्रियाँ धवल मगल करके झरोखों में चढ़-चढ़ कर गाती, पट-मण्डप छाए जाते, मगल-कलश बाँधे जाते, कृष्णा का रत्नों से सिगार होता, मोतियों से माँग सँवारी जाती, मैं महलों की जाली से सब उत्सव देखती ! हाय, मेरी कृष्णा ! (सिसकने लगती है।)

कृष्णा—(सान्त्वना के स्वर में) माँ ! सिसोदिया-वश में सन्तान का मोह कलक है। यह कलक अपने ऊपर मत आने दो।

महारानी—(करुण स्वर में) बेटी, तुझसे मैं क्या कहूँ ! किन्तु क्या माँ भी अपनी बेटी को विष दे सकती है ?

कृष्णा—माँ ! आज मैं तुमसे अन्तिम वरदान माँगती हूँ, जो एक राजपूत रमणी अपनी पुत्री को उस समय देती है, जब उसका और उसकी मातृभूमि का सम्मान सकट में है। माँ ! मेरी याचना स्वीकार करो।

महारानी—(सिसकते हुए) यह मुझसे कैसे होगा, बेटी ?

कृष्णा—माँ ! विष तो मैं स्वयं भी पी सकती हूँ, किन्तु माता के हाथ से पीने में वह विष भी अमृत हो जायगा । (आग्रह के स्वर में)
माँ ! मेरी प्रार्थना मान लो । जिस शरीर की रक्षा नौ मास तक तुमने अपने उदर में इतनी सावधानी से की, क्या उसकी सम्मान-रक्षा अब तुम नहीं करोगी ? तुम माँ हो, बेटी की प्रत्येक प्रकार की रक्षा तुम्हें ही करनी है ।

महारानी—(रोते हुए) मैं इंगे कैसें अस्वीकार करूँ, बेटी ! पर मैं अपनी कृष्णा को विष कैसे दे सकूंगी ? (रोते हुए प्रस्थान)

कृष्णा—(महाराना से) पिताजी ! आप इतने उदास न हो । आपने मेवाड़ की रक्षा कर ली है । आपने इस समय अपने विवेक का परिचय दिया है ।

महाराना—कृष्णा ! तू नहीं जानती कि इस समय मेरा हृदय कितना हाहाकार कर रहा है !

कृष्णा—नहीं, पिताजी ! राजस्थान में कन्याएँ तो जन्म से ही मृत्यु को सौंप दी जाती हैं । आपने मुझे इतने वर्षों का वरदान देकर मुझ पर कितना उपकार किया है ! यह आपका दिया जीवन यदि आपके चरणों में ही समर्पित कर दूँ, तो यह मेरा कर्त्तव्य ही होगा ।

महाराना—(करुण स्वर में) कृष्णा !

कृष्णा—और पिताजी ! आज तक राजस्थान में नारियों ने न जाने कितने सम्मिलित जौहर किए हैं, यदि आज मैं अकेली ही जौहर करूँ, तो क्या आपको सुख और सन्तोष नहीं होगा ? मैं अपने पिता की (महारानी एक भरा हुआ पात्र लेकर आती है ।)
ओह, तुम कितनी महान् हो, माँ ! यह विष का प्याला लेकर तुम आ गई ! तुमने राजपूतों की माताओं के सामने ही नहीं, समस्त ससार की माताओं के सामने आत्म-सम्मान का उज्ज्वल आदर्श रखा है ! माँ ! तुम धन्य हो ! (पात्र हाथ में लेती है ।)

मेरी प्रणाम स्वीकार करो । पिताजी । आपको मेरा प्रणाम है । प्राणों से अधिक प्यारी अपनी मेवाड-भूमि के प्रति और प्रत्येक राजपूत नारी के प्रति मेरी मंगल-कामना स्वीकार हो । जय एकनिंग ! (भरा हुआ पात्र ओठों से लगाकर पी जाती है ।)

महाराणा—(चील कर) कृष्णा, मेरी बेटी कृष्णा ।

कृष्णा—(एक क्षण के बाद) माँ । तुमने मुझे धोखा दिया है । विष के प्याले के स्थान पर तुमने कुसुम्मा का मधुर पात्र दे दिया । हाय री, माँ की ममता । तुम्हारे इस प्रेम को मैं क्या कहूँ ।।

महाराणा—क्या यह विष का पात्र नहीं है ?

कृष्णा—नहीं, पिताजी । विष-पात्र भी हो, तो वह स्नेहमयी जननी के हाथों से अमृत-पात्र हो जायगा । अब भगवान एकलिंग को मैं जिस विष का नैवेद्य लगाऊँगी, वही महाप्रसाद मैं ग्रहण करूँगी । वही मेरे भाग्य का सबसे बड़ा वरदान होगा । माँ । अन्तिम विदा लेती हूँ । तुम्हें और पिताजी को प्रणाम । जय मेवाड । (प्रस्थान)

महारानी—(क्रन्दन के स्वर में) बेटी! बेटी ।। कृष्णा ।।। (पीछे-पीछे शीघ्रता से जाती है । नेपथ्य में—बेटी-बेटी, कृष्णा ।)

महाराणा—(शिथिल स्वर में) मेवाड को इस सुकुमार बलि की भी आवश्यकता थी । यह राजपूतों के जीवन की सबसे बड़ी हार है । सबसे बड़ा कलक है ।

[नेपथ्यमें बड़ी हलचल होती है । शक्तावत सरबार संग्रामसिंह कहते हैं : मुझे मत रोको । मैं महाराणा से मिल कर ही रहूँगा ।]

[सड़खड़ाहट के साथ संग्रामसिंह प्रवेश करते हैं ।]

संग्रामसिंह—महाराणा ।

महाराणा—कौन, शक्तावत संग्रामसिंह ?

संग्रामसिंह—महाराणा । क्या यह सच है कि चूडावत अजीतसिंह के कहने

से आपने जवानसिंह को राजकुमारी की हत्या के लिए नियुक्त किया और वह सफल नहीं हुआ ?

महाराणा—मैं इसका उत्तर नहीं दे सकूंगा ।

सग्रामसिंह—क्योंकि यह सच है । और क्या यह भी सच नहीं है कि कृष्णाकुमारी ने राजपूतों को वीरता पर कलक लगाने वाले कायरों और नपुंसकों की तरह समझा है और स्वयं विष-पान करने का जोहर अपने ऊपर लिया है ? क्या देवला का यह कथन सत्य नहीं है कि राजकुमारी ने आपकी चिन्ता दूर करने के लिए एकलिंग को हलाहल का नैवेद्य चढ़ा कर स्वयं उसे पीने का प्रण किया है ?

महाराणा—(शिथिल स्वर में) सत्य है, सग्रामसिंह । अमीरखाँ से रक्षा पाने का और कोई उपाय जो नहीं था ।

सग्रामसिंह—(आवेश से) तो यह कहिए कि राजपूत की तलवार का पानी उतर चुका । मेवाड़ की राजकुमारी अपने आत्म-सम्मान के लिए मृत्यु से सहायता माँगे और जोर की तरह जीवन से चिपटे हुए राजपूत मातृभूमि का रक्त चूसते रहे ? और जब कृष्णा को मृत्यु-दण्ड दिया गया, तो आपने मेवाड़ के सैनिकों को आत्म-हत्या की आज्ञा नहीं दी ? आपकी कमर से यह तलवार लटकती रही और आपने इसके टुकड़े-टुकड़े नहीं किए ? असमर्थता का राग अलापने वाला पिता क्या कन्या से पहले विष-पान नहीं कर सकता था ?

महाराणा—(चीख कर) सग्रामसिंह !

सग्रामसिंह—मुझे किसी बात का भय नहीं है । मैंने महाराज शक्तिसिंह के वश में जन्म लिया है, जिन्होंने विपत्ति में महाराणा की रक्षा की । मुझे विलम्ब से सूचना मिली, नहीं तो कृष्णा का जीवन घरोद की तरह नष्ट न किया जा सकता । और उस

कायर-कलकी अजीतसिंह का प्रस्ताव आपने माना ही क्यों ? क्या इमसे सारी राजपूत-जाति हमेशा के लिए लाञ्छित नहीं हुई ? क्या अमीरखाँ पठान ने मेवाड़ को नष्ट कर दिया ? और क्या बेचारी कृष्णा के मरने से उदयपुर हमेशा के लिए सुरक्षित हो गया ? अमीरखाँ अगर सामने था, तो क्या अजीत-सिंह अपने पूर्वजों की तरह मर नहीं सकता था ? मरने की चुनौती पर मैं—सग्रामसिंह—सबसे पहले पूर्वजों का ऋण चुकाता । लेकिन यह बात मुझसे छिपा कर रखी गई । अजीतसिंह ही आपका सर्वस्व था, जो तलवार लेकर शत्रुओं पर कूदना नहीं जानता, जानता है एक अबोध कन्या की हत्या से शत्रु के अट्टहाम में अपनी निर्लज्ज हँसी मिलाना ।

महाराणा—सग्रामसिंह, तुम मुनो ।

सग्रामसिंह—नहीं सुनूँगा, महाराणा । राजनीति की बातें सुनने का अवकाश नहीं है । जो राज्य अपनी राजपुत्री की रक्षा नहीं कर सका, उसे नष्ट हो जाना चाहिए । जो पिता अपनी पुत्री की हत्या के षड्यन्त्र में शामिल हो, वह पिता

महाराणा—खामोश, सग्रामसिंह ।

सग्रामसिंह—यह लीजिए तलवार । इसे वापस लौटाता हूँ । (तलवार फेंकता है ।) युगों से यह तलवार हमारे वश में रही है । इसने उदयपुर की सेवा में सहस्रों मस्तकों को काटा है । हमारे पूर्वजों ने इसीसे इस राजवंश की सेवा की है । कृष्णा की इस लज्जाजनक मृत्यु के बाद यह तलवार हमारे वश में नहीं रहेगी । आज से हमारी तलवार इस राज्य से विदा हुई । इस गिरी हुई तलवार को तोड़ डालिए या अपनी कन्या के मृत शरीर पर इस तलवार से फिर प्रहार कीजिए । जय एकलिंग ।

महाराणा—सग्रामसिंह, सग्रामसिंह .

(महारानी का देवला के साथ सिसकते हुए प्रवेश)

महारानी—(करुण कण्ठ से सिसकियाँ लेती हुई) मेरी कृष्णा, मेरी कृष्णा अब इस ससार में . नहीं रही . . ।

महाराणा—(बिह्वल स्वर से) कृष्णा ।

देवला—(सिसकते हुए) महारानी मूर्च्छित हो गई थी । मेरे रोकने पर भी राजकुमारी ने तीन बार विष-पान किया । तीनों बार वमन के द्वारा वह निकल गया । अन्त में उन्होंने गहरी अफीम के कुसुम्मा को हँसते हुए पान किया । महाराज एकलिंग को प्रणाम कर वे सदा के लिए गहरी नीद में सो गई ।

महारानी—(चील कर) मेरी कृष्णा ।

महाराणा—(कातर होकर) मुझे धिक्कार है ।

महारानी—काला जहर उसके सारे शरीर में फैल गया । क्या कोई उस जहर को नहीं उतार सकता ?

(दूर पर सँपेरे की बीन सुनाई पड़ती है ।)

देवला—साँप के जहर की तरह इसका जहर भी नहीं उतरेगा ।

महाराणा—वह जहर अब नहीं उतर सकेगा महारानी । उसका जहर और मेरी कलक-रेखा सदा के लिए अमर हो गई ।

[रानी की एक गहरी सिसकी । दूर से आती हुई सँपेरे की बीन सुनाई पड़ रही है ।]

इस संग्रह के नाटकों की पात्र-सूची

संकेताक्षरो की सूची

प्र०—प्रतिशोध

दु०—दुर्गवती

तै०—तैमूर की हार

अ०—औरंगजेब की आखिरी रान

क०—कलक-रेखा

पुरुष

अधारासिंह (दीवान)	ग्रामीण (३)	[तै०]	व्यक्ति (४)	[क०]
[दु०]	जवानसिंह	[क०]	श्रीधर	[प्र०]
अलीबेग	जफर अली	[तै०]	सग्रामसिंह	[क०]
औरंगजेब (आलम- गीर)	तैमूर	[तै०]	सँपेरा	[क०]
[अ०]	बलकरन	[तै०]	सैनिक	[दु०]
करीम	भारवि	[प्र०]	हकीम	[अ०]
[अ०]	भीमसिंह	[क०]	हैदर अली	[दु०]
कर्णसिंह	मुबारक	[तै०]		
[दु०]	वीरनारायण	[दु०]		
कातिब				
[अ०]				
गडासेन				
[दु०]				

स्त्री

आभा	[प्र०]	[क०]	देवला	[क०]
कल्याणी	[तै०]	जीनत उन्निसा बेगम	पाडवी	[दु०]
कृष्णाकुमारी	[क०]	[अ०]	भारती	[प्र०]
चावडी (महारानी)	दुर्गवती	[दु०]		
[क०]				

भारताय ज्ञानपीठ काशी के

[हिन्दी ग्रन्थ]

१ मुक्तिदूत (द्वितीय मस्करण)	५)
२ दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ	३)
३ पथचिह्न (स्मृति रेखाएँ)	२)
४ पाञ्चात्य तर्कशास्त्र (अप्राप्य)	६)
५ योग-ओ-गायत्री (द्वितीय मस्करण)	८)
६ मिलन यामिनी (गीत)	७)
७ वैदिक साहित्य	६)
८ मेरे बापू	२॥)
९ पञ्च-प्रदीप (गीत)	२)
१० भारतीय विचारधारा	२)
११ ज्ञानगंगा (श्रेष्ठतम मूक्तियाँ)	६)
१२ गहरे पानी पैठ	२॥)
१३ वर्द्धमान (महाकाव्य)	६)
१४ शेरों-मुखन	८)
१५ जैन जागरणके अग्रदूत	७)
१६ आधुनिक जैन कवि	३॥)
१७ हिन्दी जैन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास	२॥॥=

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१८ कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न	२७
१९ जन शासन (द्वितीय संस्करण)	३१

[प्राकृत, संस्कृत लोकग्रन्थ]

२० महाबन्ध (महाधवल सिद्धान्त शास्त्र)	१२१
२१ करलक्ष्ण (मामुद्रिक शास्त्र)	१३
२२ मदन पराजय	८१
२३ कन्नडप्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची	१३३
२४ तत्त्वार्थवृत्ति (हिन्दीसार सहित)	१६३
२५ न्यायविनिश्चय विवरण (प्रथम भाग)	१५१
२६ सभाष्य रत्नमजूषा	२११
२७ नाममाला सभाष्य	३११
२८ केवलज्ञानप्रश्न चूडामणि	४१
२९ आदिपुराण (प्रथम भाग)	१०१
३० आदिपुराण (भाग २)	१०१
३१ समयमार (अंग्रेजी)	८१
३२ कुरल काव्य (तामिल भाषाका पञ्चम वेद)	४१

सन् १९५१ की प्रकाशित पुस्तकें



भारतीय ज्ञानपीठ का

